समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

KALPAVRIKSH
कल्पवृक्ष
Environmental Action Group

अंक ४, नं. ३, मे-अक्टूबर २०१२

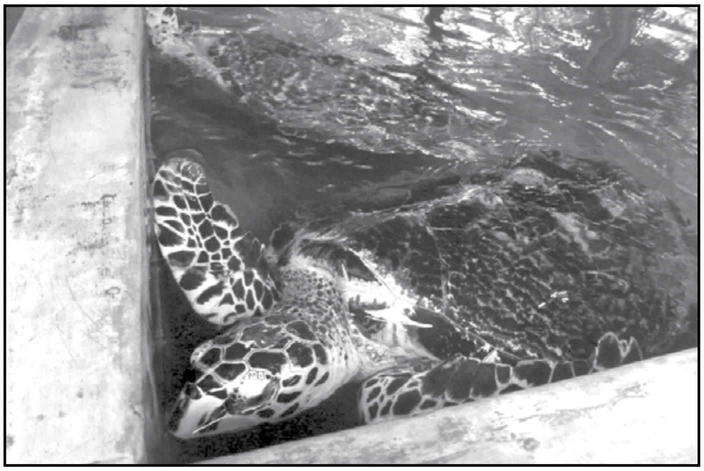

विषय सूची

संपादकीय

१. **समाचार और घटनाक्रम**

- समुदाय आधारित संरक्षण के प्रयासों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का चार समुदायों को पुरस्कार देने का फैसला
- जनजातिय कार्य मंत्री किशोर देव ने राज्यपालों के खदानों को रद्द करने का अधिकार बताया
- सी.ओ.पी.टी.ए.एम. की जनजातीय मुद्दों पर सभा
- अरुणाचल प्रदेश के पास जल्दी ही अपना वन कानून होगा: पी.सी.सी.एफ.
- वन्यजीव संरक्षण कानून : कैबिनेट ने कहा कि ग्रामसभा से परामर्श जरुरी
- संकटग्रस्त वन्यजीव आवासों को कानूनी पहचान: नटराजन
- स्थानीय समुदायों को वन संरक्षण के लिए सी.बी.डी. में पहचान मिलेगी
- वन्यजीव बफर क्षेत्र: सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से जवाब मांगा
- सरकार ने बताया कि वन मंजूरियाँ राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) के अधिकार क्षेत्र से बाहर
- बाँस व्यवसाय जनजातीय लोगों के लिए खुलेगा।

२. **बहस, दृष्टिकोण तथा विश्लेषण**

- टाइगर पर्यटन पर बहस
- कॉप–११: एक दृष्टिकोण
- राष्ट्रीय निवेश बोर्ड–पर्यावरणीय न्याय का घटता दायरा
- संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व – जमीनी हकीकत और चुनौतियां

३. **कार्यशाला और सम्मेलन**

- वनअधिकार कानून तथा संरक्षित क्षेत्रों पर राष्ट्रीय स्तर का परामर्श

४. **केस स्टडी (विषय अध्ययन)**

- काले मृग (हिरण) की भेटनोई–बालीपदार क्षेत्र मे सुरक्षा
- पाकिडी : मोरों का स्वर्ग
- श्रीलंका में कछुआ संरक्षण पर तथ्य
- भोरगड़ – सात पहाडियों वाला संरक्षण रिज़र्व

विशेषांक - संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व

संपादकीय–

अक्टूबर २०१२, हैदराबाद में संपन्न सी.बी.डी. कॉप–११ मे हिस्सा लेने वाले विभिन्न भारतीय समुदाय–आधारित संगठनों तथा लोगों के द्वारा जारी किये गये बयान में कहा गया कि[१] भारत की आर्थिक नीतियाँ ***जैवविविधता तथा जीविकाओं को अभूतपूर्व रुप से नष्ट कर रही है।*** जैवविविधता के आधार पर चलनेवाली जीविकाएँ खनन, बाँध, बिजली प्लांटों, बंदरगाहों (पोर्ट) तथा अन्य परियोजनाओं से बुरी तरह से प्रभावित हुई हैं। आँख बंद कर आर्थिक विकास को तेज करने की होड ने ***प्राकृतिक पर्यावरण व्यवस्थाओं तथा इन व्यवस्थाओं पर निर्भर करोडों लोगों को भारी कीमत देनी पड रही है।*** गरीबी, भूख तथा कुपोषण और सामाजिक बहिष्कार की गंभीर समस्याओं से आधी से *ज़्यादा* जनसंख्या प्रभावित है। इसका कोई भी हल विकास के द्वारा निकल नहीं पाया है। इन सभी समस्याओं के लिए भारत की अंधी विकास भक्ति को प्रमुख आरोपी माना गया है। विकास की होड ने पर्यावरण प्रशासन की प्रणाली को कमजोर करने के साथ पर्यावरण और लोगों की जीविका सुरक्षा से जुड़े कानूनों तथा दिशा–निर्देशों का उल्लंघन किया है।

इस माहौल मे न्याय की संभावना पर विश्वास करना दिन–ब–दिन मुश्किल होता जा रहा है। बहुत से न्याय चाहने वाले राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल (याने ***नॅशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल***-एन.जी.टी.) को एक सकारात्मक महत्त्वपूर्ण न्यायिक मंच के रुप मे देखते हैं। अपने एक आदेश में भारत के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने यह स्पष्ट किया था कि वन्यजीव से जुड़े मुकदमों को छोडकर पर्यावरण से जुड़े सभी मुकदमों, उच्चन्यायालय (हाइकोर्ट) में लंबित पर्यावरण के मुकदमों और भविष्य में दायर किये जाने वाले ऐसे सभी मुकदमों को एन.जी.टी. को भेजा जाएगा। क्या इस प्रयास से सही मायनों मे न्याय मिल पायेगा? न्यायाधीश स्वतंत्रकुमार का निर्णय [२] एन.जी.टी. के महत्व और अधिकार क्षेत्र को बढायेगा? सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय लोगों के पर्यावरण से जुड़े न्याय (तक पहुँच का) पर बडा और गहरा प्रभाव डालेगा। यह समझना सरल है कि सुप्रीम कोर्ट की भावना अच्छी है कि सभी पर्यावरणीय मुकदमे एन.जी.टी. द्वारा सुने जाएँगे। परन्तु, इससे कानून और प्रक्रिया से जुडी गंभीर चिंताएँ ऊभरी हैं। इसके गठन के पूरा एक साल गुजर जाने के बाद भी एन.जी.टी. अभी पूरी तरह से काम नहीं कर रहा है, जैसे कि देश की बहुत सी खण्डपीठों ने काम करना शुरु नहीं किया है। विशाल देश के सुदूर क्षेत्र मे रहने वाले गरीब लोगों को ट्रिब्यूनल तक पहुंचना एक कठिन और कीमती काम है। भविष्य में ट्रिब्यूनल की काम करने से जुडी प्रक्रिया से संबंधित कठिनाईयों को दूर किया जा सकता है। परन्तु सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा कुछ अन्य आशंकाएँ उठाई गयी हैं, जैसे, क्या केवल ट्रिब्यूनल एकमेव न्यायिक मंच होगा जो पर्यावरणीय प्रकरणों पर न्यायिक निर्णय देगा?

हाईकोर्ट तथा अधीनस्थ न्यायालय अक्सर पर्यावरणीय प्रकरणों पर कुशलता से निर्णय लेते आए हैं। ये न्यायिक फोरम किसी व्यक्ति को उसके भौगोलिक क्षेत्र में न्यायिक मंच की उपलब्धता का विशेष अवसर देते हैं। इसके अलावा यह प्रक्रिया कई न्यायाधीशों को पर्यावरण पर पडनेवाले जटिल प्रभावों तथा इससे जुड़े ***न्याय के प्रति संवेदनशील बनाती है,*** जो कि अपने आप मे एक सकारात्मक उपलब्धि है। लोगों की पर्यावरण हानि से जुडी चिंताओं को भारत के न्यायालय के सामने लाने के लिए मुकदमों को दायर करने के लिए किसी विशेषज्ञता के लिए मजबूर होना नहीं पड रहा है। कानून में एक कमी[३] के रह जाने के कारण कानूनी रुप से स्थापित अर्ध- न्यायिक पैनल के दायरे से वन मंजूरीयाँ बाहर हो गयी। एन.जी.टी. कानून मे केवल राज्यों द्वारा परियोजना को सौंपी जानेवाली अंतिम स्टेज को ही रखा गया है, जिसकी एन.जी.टी. समीक्षा करेगा। कानून में यह साफ तौर पर नहीं बताया गया है कि केंद्र के द्वारा लिये गये निर्णयों की समीक्षा पैनल के अधिकार क्षेत्र में होगी या नहीं, जो पर्यावरण से जुड़े ***न्याय के लिए जरुरी है।***

संबंधित लोगों के लिये यह पूरी तरह से ठीक नहीं है कि वे इस तरह के ट्रिब्यूनलों के प्रति ज़्यादा आशन्वित हो और इन पर अपने प्रयासों को केन्द्रित करें। उनके लिए यह जरुरी है कि वे विभिन्न कानूनों, जैसे वन्यजीव संरक्षण कानून (डब्लू.एल.पी.ए.), १९७२, इत्यादी मे बताये गये समुदाय और संरक्षण के प्रावधानों को लागू करने की दिशा में प्रयास जारी रखें। डब्लू.एल.पी.ए. में इस प्रकार की व्यवस्था सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र (कम्यूनिटी रिज़र्व) तथा संरक्षण आरक्षित क्षेत्र (कॉन्ज़र्वेशन रिज़र्व) के रुप में की गयी है।

भारत मे ६६८ संरक्षित क्षेत्रों (पी.ए.) का नेटवर्क है जो १,६१,२२१.५७ वर्ग किमी. क्षेत्र मे फैला है। यह क्षेत्र भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का ४.९० प्रतिशत हिस्सा है। संरक्षित क्षेत्रों के नेटवर्क में १०२ राष्ट्रीय उद्यान, ५१५ वन्यजीव अभयारण्य, ४७ संरक्षण रिज़र्व तथा ४ समुदायिक रिज़र्व शामिल हैं [४]। ४७ संरक्षण रिज़र्व में से ३४ रिज़र्व जम्मू और काश्मीर में हैं (जो कि कुल संख्या के ७० प्रतिशत से ज़्यादा हैं।), ३ रिज़र्व राजस्थान में; हरियाणा, कर्नाटक तथा उत्तराखण्ड राज्य में दो दो रिज़र्व तथा गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब तथा

१. देखें: **India's Economic Policies are Destroying Biodiversity and Livelihoods; Commitments under CBD are not being Met,** http://iccaconsortium. wordpress.com/2012/11/18/ indias-economic-policies-are-destroying-biodiversity-and-livelihoods-cbd-and-livelihoods-cbd-commitments-not-being-met/

२. देखे: **Tribunal to hear all green cases,** Nitin Sethi http://times of india.india times.com/home.environment/wild-wacky/Tribunal-to-hear-all-green-cases/article show/15455169.cms#write

३. देखे: **Forests clearances out of National Green Tribunal ambit:Government,** Nitin Sethi, http//articles. times of india.indiatimes.com/2012-10-25/developmental-issues/ 34728758_1_project-proponent-forest-clearances-forest-advisory-committee

४. स्रोत: http://envfor.nic.in/downloads/public-information/protected-area-network.pdf

तमिलनाडु में एक–एक रिज़र्व की स्थापना की गयी है। जम्मू–कश्मीर के सभी ३४ संरक्षण रिज़र्वों की स्थापना २००२ के पहले की गयी थी। जबकि अन्य राज्यों में स्थित रिज़र्वों की स्थापना २००२ के बाद की गई है।

अब तक स्थापित ४ समुदायिक रिज़र्वों में से पंजाब में दो और कर्नाटक तथा केरल मे एक–एक समुदायिक रिज़र्व की स्थापना की गयी है। यह दुर्भाग्य ही है कि पिछले १० वर्षों में, जब से डब्लू. एल.पी.ए. में संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व के लिए प्रावधान किये गये हैं, केवल ४७ संरक्षण रिज़र्व और ४ समुदायिक रिज़र्वों की ही स्थापना हो पायी है।[५]

डब्लू.एल.पी.ए. के अलावा वनअधिकार कानून, २००६ (एफ. आर.ए.) और जैवविविधता कानून २००२ (बी.डी.ए.) में भी समुदायिक भागीदारी के प्रावधान किये गए हैं। विभिन्न राज्यों ने अपने राज्य के नियमों मे संरक्षण के लिए समुदाय की भागीदारी कुछ सीमा तक तय की है। इससे जुड़े कुछ प्रावधान पर्यावरण विकास समितियों, संरक्षण तथा समुदाय रिज़र्व प्रबंधन समितियों (डब्लू.एल.पी.ए. मे बतायी गयी), वनअधिकार कानून मे बतायी गयी वनअधिकार समितियों, जैवविविधता कानून के तहत जैवविविधता प्रबंधन समितियों और ग्रामीण वन समितियों के लिए किये गये हैं। समुदायों के लिए इन स्थानों को जांचने–परखने की आवश्यकता है।

सी.बी.डी. के तहत बनाये गये आइची लक्ष्यों मे यह निर्धारित किया गया है कि २०२० तक १७ प्रतिशत भू–क्षेत्र और १० प्रतिशत तटीय और समुद्री क्षेत्र जिसकी जैवविविधता महत्त्वपूर्ण हो, उसके संरक्षण के लिए इन क्षेत्रों को मसंरक्षित क्षेत्रफ घोषित किया जाएगा और/या किसी क्षेत्र आधारित उपयुक्त संरक्षण व्यवस्था को उपयोग में लाया जाएगा। विश्व की सभी सरकारों द्वारा सी.बी.डी. को विशेष रुप से संरक्षित क्षेत्रों को अधिकारिक पहचान की दिशा में किये गये प्रयासों की जानकारी दी जाती है। जबकि पारंपरिक समुदायिक संरक्षित क्षेत्रों (आइ.सी.सी.ए.) के बारे में ऐसे कोई प्रावधान नहीं हैं। गैर लाभकारी समूह, जो मूल तथा स्थानीय समुदायों के अधिकारों के लिए काम कर रहे हैं, उनका दावा है कि यदि इन रिज़र्वों को पहचान दे कर सहायता दी जाए, तो इन क्षेत्रों में यह क्षमता है कि ये सरकारों को आइची लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम करेंगे। वन्यजीव संरक्षण कानून १९७२ (डब्लू.एल.पी.ए.) मे बताये गये संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व के प्रावधानों तथा वनअधिकार कानून २००६ मे बताये गये वनअधिकारों से जुड़े प्रावधानों के साथ जैवविविधता कानून २००६ के प्रावधानों के द्वारा आइची लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

मिलिंद

५. स्रोत:http://envfor.nic.in/downloads/public-information/protected-area-network.pdf

समाचार और घटनाक्रम

समुदाय आधारित संरक्षण के प्रयासों के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का चार समुदायों को पुरस्कार देने का फैसला–

वनों के संरक्षण से जुड़े अच्छे प्रयासों के लिए पूरे भारत से ओडिशा के पीर जहनिया जंगल सुरक्षा समिति के साथ देश के तीन अन्य समुदायों को भारतीय जैवविविधता पुरस्कार दिया गया। वर्ष १९९९ में आये भीषण चक्रवात ने लोगों के घरों और जीविका को नष्ट कर दिया था। चक्रवात से हुए नुकसान की भरपाई करने के लिए ओडिशा के गुंडलबा गांव की महिलाओं के एक समूह ने जिम्मा लिया। इन महिलाओं ने अपने प्रयासों में मैनग्रोव के जंगलों तथा समुद्री प्रजातियों के संरक्षण के उपायों को शामिल किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं के द्वारा अपनाये गये संरक्षण के मॉडल को विश्व के अन्य क्षेत्रों के लिए भी उपयोगी पाया।

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास प्रोजेक्ट (यू.एन.डी.पी.) की रिपोर्ट मसंपूर्ण भू–क्षेत्र पर संरक्षण : जैवविविधता शासन की ओर अग्रसर भारतफ में बताया गया है कि भारत में प्रयोग मे चल रहे जैवविविधता शासन के तरीकों से पूरे विश्व मे अगली पीढी के जैवविविधता शासन के मॉडलों को बनाया जा सकता है। इस रिपोर्ट में भारत की विशिष्ट जैवविविधता तथा प्रकारों या संसाधनों के उपयोग के प्रारुपों को जिससे बढावा मिला उसे बताया गया है।

समिति की सदस्य चाथू देवी बताती हैं कि ‘हमारा काम प्रमुख रुप से मैनग्रोव के जंगलों के संरक्षण तथा ओलिव रिडली कछुओं के निवास स्थानों के प्रबंधन करना है। पिछले १२ वर्षों मे वन क्षेत्र में ६३% प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है। मछली की उपलब्धता प्रति परिवार १ किलो से बढकर ५ किलो हो गयी है। क्षेत्र में होने वाले पलायन में कमी होने के साथ मैनग्रोव के फिर से आ जाने से तटीय भूमि के कटाव को नियंत्रित किया जा सका है।’

उदयपुर स्थित वन उद्यान संस्थान, जो २४० गांवों मे ६७,००० हेक्टेयर वन भूमि की सुरक्षा तथा प्रबंधन से जुडा है, उसके अनुभव भी इसी प्रकार के हैं। समुदाय के सदस्य कीर्तन कुमार, जिनके प्रयासों को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पहचाना गया है, वह बताते है कि ‘हम भूमि पर चराने के दबाव, खनन तथा वन भूमि के अवैध निजीकरण के मुद्दों को लेकर कई गांवों में काम कर रहे हैं। संरक्षण के प्रयासों के कारण वनस्पति क्षेत्र, महत्वपूर्ण वनस्पतियों की प्रजातियों और जानवरों की संख्या में वृद्धि हुई है।’

संरक्षण के जिन अन्य प्रयासों को संयुक्त राष्ट्र संघ पुरस्कार मिला है उनमे संयुक्त वन प्रबंधन समिति (जि. गडचिरोली, गांव. शंकरपूर) तथा पेरियर टाइगर रिज़र्व की पर्यावरण विकास समिति शामिल है।

स्रोत: http://twocircles.net/2012oct18/un_awards_four_community based_conservation_efforts.html

जनजातीय कार्य मंत्री किशोर देव ने राज्यपालों के खदानों को रद्द करने के अधिकार को बताया।

केन्द्रीय जनजातीय कार्य तथा पंचायती राजमंत्री किशोर चंद्र देव ने बताया कि उनका मंत्रालय खनिज संसाधनों के प्रोजेक्टों जैसे बाक्साइड खनन, लोह अयस्क या अन्य खनिजों पर नजर रखे हुए है। यह प्रोजेक्ट उन क्षेत्रों में काम कर रहे है जहां जनजातियों के अधिकारों को संविधान में सुरक्षा दी गयी है। मंत्रीजी ने बताया कि वे सूची ५ के अंतर्गत आने वाले ५ राज्यों के राज्यपालों को प्रोजेक्टों द्वारा जनजातियों के संवैधानिक संरक्षण के प्रावधानों के उल्लंघन की स्थिति मे खनन पट्टों को निरस्त किये जाने के उनके अधिकारों के बारे मे लिखेंगे।

मंत्रीजी ने आंध्र प्रदेश के विशाखापट्टनम मे बाक्साइड खनन के पट्टे को निरस्त करने का आदेश दिया है। विशाखापट्टनम प्रदेश का बाक्साइड वाला क्षेत्र है जहां आंध्र प्रदेश खनिज विकास निगम को जिंदल स्टील तथा यू.ए.ई. स्थित रास अल खै इमाट निगम के साथ संयुक्त रुप से उनके एल्यूनियम रिफाइनरी के लिए खनन करना था। मंत्रीजी ने बाक्साइड की कमी के चलते बंद होने की स्थिति मे पहुंची वेदांता कंपनी के विषय मे बताया कि मकल कोई दिल्ली के बाहर एक बडा प्लांट लगाता है और बाद मे यह पता लगाता है कि इंडिया गेट या राष्ट्रपति भवन के मैदान के नीचे हीरे या सोने का भंडार है तो क्या आप उनको खनन करने देगे?फ इसके अलावा यह भी तथ्य है कि वनअधिकार कानून, जनसुनवाई और पंचायत (एक्सटेनशन स्यूडूल एरिया) कानून १९९६ के प्रावधानों को लागू नहीं किया गया है। इन क्षेत्रों में उग्रवाद के बढने के पीछे खनन से जुडा डर है। हम खनिज के मानचित्र और आनेवाले २५ या ५० सालों की घरेलू आवश्यकताओं के अनुमान के बिना संसाधनों को गवाने के लिए तैयार नहीं हो सकते हैं।

स्रोत: http://economictimes.indiatimes.com/news/news-by-industry/india-goods/svs/metals-mining/tribal-affairs-minister-deo-to-apprise-governors-of-right-to-cancle-mines/articleshow/16661777.cms

कॉपटाम (सी.ओ.पी.टी.ए.एम.) की जनजातीय मुद्दों पर सभा

९ सितंबर, २०१२ को कान्स्टिट्यूशन क्लब, रफी मार्ग नई दिल्ली मे मणिपूर की जनजातीय क्षेत्रों की सुरक्षा समिति (सी.ओ.पी.टी.ए.एम.) की सभा हुई। इस तीसरे बौद्धिक सभा–२०१२ के विषय "मूल निवासी जनजातीय भूमि अधिकार सुरक्षा" के तहत मणिपुर में जनजातीय लोगों तथा उनकी भूमि से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर विचार किया गया। इस सभा में उपस्थित जनजातीय नेताओं तथा बुद्धिजीवियों ने जनजातीय भूमि से जुडी समस्याओं और इसे दूर करने के संभावित उपायों पर विचार–विमर्श किया।

सभा में उपस्थित लोगो ने सी.ओ.पी.टी.ए.एम. द्वारा मणिपूर में अपनी शिकायतों को लेकर की गयी याचिकाओं, विरोधों और प्रजातांत्रिक आंदोलनों की राज्य सरकार द्वारा उपेक्षा की जाने पर चिंता जाहिर की। उन्होंने केन्द्र सरकार से इस विषय पर तत्काल हस्ताक्षेप की मांग करते हुए मणिपूर जनजातीय क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए संविधान के मौजूदा प्रावधानों के तहत कदम उठाने को कहा।

अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वनअधिकारों की मान्यता) अधिनियम, २००६ संभवत: मणिपूर राज्य के पहाडी क्षेत्रों में लागू नहीं होगा। मणिपूर मे आरक्षित तथा संरक्षित वनों की घोषणा अनुसूचित जनजातीय समुदाय के भूमि मालिकों की अनुमति तथा जानकारी के बिना की गयी थी। ऐसी भूमि को सही मालिकों को वापस लौटाने पर भी विचार किया गया।

इस सभा में हिस्सा लेने वाले एक व्यक्ति का कहना था कि "सरकार को जनजातीय भूमि, संस्कृति, रिवाजों, मूल्यों तथा पारंपरिक संस्थाओं को संवैधानिक सुरक्षा देनी चाहिए, न कि मणिपूर (पहाडी क्षेत्रों मे ग्रामीण अधिकरण) अधिनियम १९५६ और मणिपूर (पहाडी क्षेत्रों) जिला काउन्सिल अधिनियम, १९७१ मे मामूली संशोधन।"

स्रोत: The Sangai Express/ Newmai News Network, http://e-Pao.net/Gp.asp?src=5..110912. sep12

अरुणाचल प्रदेश के पास जल्दी ही अपना वन कानून होगा: पी.सी.सी.एफ.

८ अक्टूबर, २०१२ को अरुणाचल प्रदेश के प्रधान मुख्य वन संरक्षक बी.यस.साजवान ने बताया कि राज्य सरकार जल्दी ही स्वयं का वन कानून लागू करेगी। यह कानून राज्य के प्राकृतिक वनों के साथ–साथ विभिन्न जीव–जंतुओं और वनस्पतियों की प्रजातियों की सुरक्षा सुनिश्चित करेगा। पत्रकार वार्ता में एक प्रश्न का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि "राज्य की जैवविविधता सुरक्षा के लिए हम अपने स्वयं के वन कानून बनाने के प्रति गंभीर है।" वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश मे असम वन नियंत्रण कानून (ए.एफ.आर.ए.) १८९१ लागू है।

राज्य के विभिन्न जलविद्युत परियोजनाओं के स्थानीय पर्यावरण पर पडने वाले प्रभाव से जुड़े एक अन्य प्रश्न के उत्तर मे पी.सी.सी.एफ. ने कहा कि केन्द्रीय पर्यावरण एवं मंत्रालय किसी परियोजना को मंजूरी देने के पहले एक पर्यावरणीय प्रभाव आंकलन करता है।

वन सुरक्षाबल (एफ.पी.एफ.) तथा विशेष बाघ (टाइगर) सुरक्षाबल (यस.टी.पी.एफ.), जिन को राज्य विधानसभा ने हाल ही मे पारित किया है, दोनों के बारे में पी.सी.सी.एफ. ने कहा कि "केन्द्र ने पाक्के टाइगर रिज़र्व, में पूर्वी केमांग जिले के यस.टी.पी.एफ. कंपनी तैनात करने की अनुमति दी है। हम लोग जल्दी ही इसी प्रकार का प्रस्ताव चंगलांग जिले के नामदाफा टाइगर रिज़र्व, में देने वाले है।"

स्रोत: http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2012-10-8/guwahati/34322132_1_forest-laws-changlang-district-hydro-power-projects

वन्यजीव (संरक्षण) कानून : कैबिनेट ने कहा कि ग्रामसभा से परामर्श जरुरी

किसी भी क्षेत्र को वन्यजीव उद्यान या अभयारण्य घोषित करने के पहले ग्रामसभा से परामर्श किया जायेगा।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता वाली कैबिनेट की एक मीटिंग में वन्यजीव (संरक्षण) कानून, १९७२ में संशोधनों को अनुमति दी गयी। संशोधनों के द्वारा किसी अनुसूचित क्षेत्र को अभयारण्य घोषित करने के पहले ग्रामसभा से परामर्श को अनिवार्य बनाया गया है।

कैबिनेट के निर्णय के बारे मे बताते हुए वित्त मंत्री पी.चिदंबरम ने संशोधनों को प्रगतिशील कदम बताया। उन्होने बताया कि इससे वन्यजीवों का उचित संरक्षण सुनिश्चित होगा। वित्तमंत्री के अनुसार "संशोधनों मे ग्रामसभा, पंचायत तथा अनुसूचित क्षेत्र को परिभाषित करने की बात कही गयी है। किसी भी क्षेत्र को अभयारण्य घोषित करने के लिए ग्रामसभा से परामर्श को भी संशोधनों मे बताया गया है जिससे ग्रामसभा से परामर्श अनिवार्य होगा।"

संशोधनों में स्थानीय जनजातीय समुदायों के प्रतिनिधियों को संरक्षित क्षेत्र (टाइगर रिज़र्व, राष्ट्रीय उद्यान या अभयारण्य) प्रबंधन समिति मे शामिल करने का प्रस्ताव किया गया है। वित्तमंत्री ने बताया कि यह सुझाव पंचायतीराज मंत्रालय द्वारा दिया गया था।

इन संशोधनों से वन्यजीव (संरक्षण) कानून को संकटग्रस्त वन्यजीव तथा वनस्पतियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर संधि के अनुरुप बनाया गया है। यह संधि सरकारों के बीच एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वन्यजीवों तथा वनस्पतियों के नमूनों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार उनके अस्तित्व को जोखिम में नहीं डालेगा।

स्रोत: http://www.indianexpress.com/news wildlife-protection-act-cabinet-says-consult-gram-sabha-on-land/1012013/

संकटग्रस्त वन्यजीव आवासों को कानूनी पहचान : नटराजन

५ अक्टूबर, २०१२ को पर्यावरण एवं वन मंत्री जयंती नटराजन ने बताया कि केन्द्र सरकार कानून में सुधार के उपायों पर काम कर रही है ताकि सभी वन्यजीवन आवासों (जैसे एलीफेंट (हाथी) गलियारों) को राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों के तहत कानूनी पहचान मिल सके और इनका संरक्षण किया जा सके। उन्होंने बताया कि ऐसे संकटग्रस्त वन्यजीव आवास हैं जिनको अधिसूचित नहीं किया गया है। पर्यावरण मंत्रालय संबंधित कानून मे संशोधन के लिए प्रतिबद्ध है ताकि इन क्षेत्रों को कानूनी रुप से संरक्षित किया जा सके।

विश्व वन्यजीव सप्ताह समारोह के दौरान नटराजन ने बताया कि 'हम वन्यजीव कानून मे संशोधनों को चाहेंगे ताकि संकटग्रस्त वन्यजीव आवासों को कानून में स्थान मिले और इनको नुकसान पहुचाने की कोई भी गुंजाइश नहीं रहे। मैं यह सुनिश्चित करूंगी की वन्यजीवों द्वारा उपयोग मे लाए जाने वाले आवासों तथा गलियारों को अच्छी तरह से सुरक्षित किया जा सके और संरक्षण में स्थानीय लोगों की भागीदारी भी हो।'

वन्यजीव आवासों को कानूनी मान्यता या पहचान के लिए किए जाने वाले प्रयास महत्व रखते हैं क्योकि इससे यह निर्धारित होता है कि इन क्षेत्रों में कोई भी परियोजना (आधारभूत ढांचे के निर्माण से जुडी) नहीं आ सकती है। मंत्रीजी ने कहा कि वह सुनिश्चित करेगी की संरक्षण भी अर्थव्यवस्था के साथ सरकार तथा नौकरशाही का मुख्य ऐजेंडा हो।

स्रोत: http://twoarticles.net/2012oct05/crtical_wildlife_habitats_become_legal_entities_natarajan.html

स्थानीय समुदायों को वन संरक्षण के लिए सी.बी.डी. मे पहचान मिलेगी

पूरे विश्व में समुदायों द्वारा, बिना सरकारी सहयोग के, ३७ करोड हेक्टेयर जंगल को संरक्षित किया गया है। ऐसे क्षेत्रों को जैवविविधता पर संधि (सी.बी.डी.) के अंदर जल्दी ही पहचान मिलेगी जिनका संरक्षण तथा सुरक्षा समुदायों ने कम सरकारी सहयोग के बावजूद भी किया है।

भारत मे ही लगभग १५,००० से २०,००० ऐसे क्षेत्र हैं जो समुदायों द्वारा सुरक्षित रखे गये है। इन क्षेत्रों को राष्ट्रीय उद्यानों तथा वन्यजीव अभयारण्यों की तरह कानूनी सुरक्षा नहीं मिलने के कारण इनके व्यवसायिक तथा राजनीतिक उपयोग की असुरक्षतता हमेशा रहती है।

भारत मे ऐसी नीतियां हैं जिनमें ऐसे समुदायों के अधिकारों को मान्यता दी गयी है जो वन संसाधनों का परंपरागत रुप से संरक्षण और प्रबंधन करते आ रहे हैं। भारत की ये नीतियां सी.बी.डी. के आरक्षित क्षेत्रों के कार्यक्रम के अनुरुप हैं। लेकिन इन नीतियों को वास्तविक रुप मे स्थानीय स्तर पर बहुत कम लागू किया गया है।

वनअधिकार अधिनियम, २००६ में बताया गया है कि किसी भी वन में निवास करने वाले को जंगल से तब तक हटाया नहीं जायेगा जब तक कि उनके पारंपरिक अधिकारों को मान्यता नहीं मिल जाती है। देश के विभिन्न टाइगर रिज़र्व की रिपोर्ट से यह निकल कर सामने आया है कि वनों में निवास करने वालों को उनके अधिकारों का निपटारा किये बिना जंगल से बाहर जाने के लिए बाध्य किया गया। उपलब्ध आंकडों से पता चलता है कि जुलाई २०१२ तक एफ.आर.ए. के तहत २८ लाख दावे दिये जा चुके है जिनमें से केवल ०.५ प्रतिशत ही वन संसाधनों पर समुदाय के अधिकार से जुड़े है। जिसमे उनके द्वारा परंपरागत तरीके से किये जा रहे संरक्षण तथा प्रबंधन के समुदायिक अधिकार शामिल हैं।

स्रोत: पूरे लेख के लिए देखें, http://www.downtoearth.org.in/content/forests-protected-indigenous-communities-may-get-recognition-under-cbd

वन्यजीव बफर क्षेत्र (जोन) : सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से जवाब मांगा

२१ सितंबर, २०१२ को सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्र सरकार से स्पष्ट रुप से उसका निर्णय इस सिफारिश पर मांगा कि भारत के सभी राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभयारण्यों, जिनका कुल क्षेत्र २०० वर्ग किमी. है, उनकी चारों ओर २ किमी. का अनिवार्य बफर जोन होना चाहिए।

कोर्ट ने दी गयी सिफारिशों को उचित माना क्योकि उसको इस तथ्य से अवगत कराया गया कि देश मे कुल सघन वन वाले क्षेत्र मे २ प्रतिशत की कमी आयी है। न्यायधीश अफताब आलम की अध्यक्षता वाली खण्डपीठ (जो वनो से जुड़े प्रकरणों के लिए गठित की गयी है) ने सरकार से सभी राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की चारों ओर २ किमी. का सुरक्षा घेरा अनिवार्य करने को लेकर जवाब मांगा।

यह सिफारिश वरिष्ठ वकील हरीश साल्वे, जो राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभयारण्यों के केस में अमिकस क्यूरे है उनके द्वारा दी गयी थी। केन्द्रीय सशक्त समिति (सेन्ट्रल इमपावर्ड कमेटी – सी.ई.सी.) की रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए उन्हा§ने कोर्ट को बताया कि वर्तमान दिशा–निर्देशों में २ किमी. के बफर क्षेत्र को परिभाषित किया गया है लेकिन इसको एक समान नियम बनाने के लिए यह जरुरी है कि उद्यानों तथा अभयारण्यों के घेरे से २० किमी के क्षेत्र में किसी भी गतिविधि को अनुमति नहीं दी जाए।

साल्वे ने कहा कि "में कोर्ट से आग्रह करुंगा कि ऐसा आदेश दे कि जिसमें केन्द्र या राज्य सरकारों के पास ऐसा अधिकार न हो कि वह इस सीमा का निर्धारण अलग–अलग प्रकरणों पर करे क्योकि इस अधिकार से आम तौर पर उद्देश्य पूरा नहीं होता है। इसलिए सीधे २ किमी. का क्षेत्र होना चाहिए जहां कोई भी गतिविधि नहीं हो सके। क्योकि सधन वन क्षेत्र मे १.८९ प्रतिशत की कमी आयी है।" इस तथ्य से सहमति व्यक्त करते हुए कोर्ट ने टिप्पणी की "मै सोचता हूं कि हमारे हस्ताक्षेप से चीजों में सुधार हुआ है।"

पर्यावरण एवं वन मंत्री जयंती नटराजन ने मंत्रालय के हलफनामे (एफीडेविट) मे भारत के सभी वन्यजीव अभयारण्यों तथा वनों की चारों ओर १० किमी. के बफर क्षेत्र की अनुशंसा की जिसे कोर्ट ने स्वीकार कर लिया।

स्रोतः http://www.indianexpress.com/news/wildlife-buffer-zone-sc-seeks-govt-response/1006213/0 & http://www.goachronicle.com/goa/current-affairs/19691-moef-recommends-10kms-buffer-zone-to-sc

सरकार ने बताया कि वन मंजूरियाँ राष्ट्रिय ग्रीन ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) के अधिकार क्षेत्र से बाहर:

राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल की स्थापना एक ऐसे ट्रिब्यूनल के तौर पर की गयी थी जिसमे सरकार द्वारा दी गयी पर्यावरण एवं वन मंजूरियों को चुनौती दी जा सकेगी। परन्तु कानूनी तौर पर स्थापित इस अर्ध–न्यायिक पैनल के अधिकार क्षेत्र से कानून मे कमी के कारण वन मंजूरियों को बाहर रखने का प्रयास हो रहा है। जिन चार मंजूरियों को पर्यावरण मंत्रालय देता है उनमे वन मंजूरी सबसे विवादित है और इसे प्राप्त करना बेहद कठिन है।

कानून में रहे कमीयों का फायदा लेते हुए मंत्रालय ने ट्रिब्यूनल को जानकारी दी कि मंत्रालय द्वारा दी गयी वन मंजूरियों की समीक्षा उनके द्वारा नहीं की जा सकती है। मंत्रालय का यह भी दावा है कि संसद के निर्णय मे भी यह नहीं कहा गया कि ट्रिब्यूनल वन मंजूरियों की समीक्षा करेगा।

जून २०१० तक जब ट्रिब्यूनल बनाया गया तब तक ७५,००० हेक्टेयर से ज़्यादा वन भूमि के लिए मंजूरी दी जा चुकी थी। फिर भी इसे कानून की कमी से ट्रिब्यूनल के जांच से बाहर रखा गया।

राष्ट्रीय हरित अधिकरण कानून कहता है कि वन संरक्षण कानून, १९८० की धारा २ के तहत राज्य सरकार या किसी अन्य अधिकारी द्वारा पास किये गये किसी आदेश से असंतुष्ट कोई भी व्यक्ति निर्णय की समीक्षा के लिए पैनल के पास जा सकता है।

वन संरक्षण कानून, १९८० की धारा २ वन भूमि का उपयोग या हस्थांतरण किसी प्रोजेक्ट के लिए किये जाने से संबंधित है। परन्तु वन भूमि का हस्तांतरण औद्योगिक या अन्य परियोजनाओं को दिये जाने का अंतिम निर्णय केन्द्र का होता है न कि राज्य सरकार का। यदि किसी परियोजना के लिए वन भूमि की आवश्यकता होती है तो परियोजना प्रमुख को राज्य सरकार के पास जाना पडता है। इसके बाद राज्य सरकार एक प्रस्ताव तैयार कर केन्द्र सरकार के पास अनुमति के लिए भेजती है। इस प्रस्ताव का वन परामर्श समिति (एफ.ए.सी.) परीक्षण करती है और फिर केन्द्र सरकार कानूनी रुप से बतायी गयी 'सैद्धांतिक अनुमति' देती है। इस मंजूरी के आधार पर राज्य सरकार अंतिम तौर पर परियोजना को वन भूमि सौंपती है।

एन.जी.टी. कानून में प्रावधान है कि ट्रिब्यूनल केवल राज्य सरकार द्वारा परियोजना को अंतिम रुप से सौंपी गयी भूमि की ही समीक्षा करेगा। इस कानून मे स्पष्ट तौर पर यह नहीं बताया गया है कि केन्द्र के द्वारा लिया गया निर्णय भी पैनल की समीक्षा के अंदर आयेगा जिसमें कई तकनीकी विशेषज्ञ तथा न्यायिक सदस्य हैं।

मंत्रालय का कहना है कि 'वन संरक्षण कानून की धारा २ के तहत केन्द्र सरकार की अनुमति राज्य सरकार द्वारा जारी किये गये आदेश या निर्णय पर विचार को लिखित रुप में देना है।' इसका अर्थ यह है कि वन कानून के तहत राज्य सरकार या अन्य अधिकारियों के द्वारा जारी किये गये आदेश को चुनौती तक एन.जी.टी. की क्षमता सीमित है। यह कहा गया है कि 'इसको (केन्द्र द्वारा दी गयी पहले चरण की मंजूरी) चुनौती देना एन.जी.टी. की सीमा तथा कार्य क्षेत्र से बाहर है।' यदि ट्रिब्यूनल मंत्रालय के इस तर्क को मान लेता है तो इससे यह तय हो जाएगा कि वन मंजूरीयों को जनहित याचिकाओं के माध्यम से केवल उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालयों मे चुनौती दी जा सकेगी।

स्रोतः http://timesofindia.indiatimes.com/home/environment/developmental-issues/Forest-clearances-out-of-National-Green-Tribunal-ambit-Government/article show/16945911.cms

बाँस व्यवसाय जनजातीय लोगों के लिए खुलेगा!

पर्यावरण मंत्री जयंती नटराजन ने अपने अधिकारियों की अपत्तियों को नामंजूर करते हुए १०,००० करोड के सालाना बाँस व्यवसाय मे वन विभाग के नौकरशाही के एकाधिकार को समाप्त करते हुए बाँस को लघु वन उपज घोषित कर दिया है। जबकि पहले इसे वन कानून के तहत पेड की श्रेणी में रखा गया था। इस निर्णय से वन विभाग की जगह जनजातीय लोगों को यह अनुमति होगी की वे बाँस को समुदायिक और खुद की जमीन पर उपजा कर इसकी निलामी कर सके। बाँस को कागज, लुगदी (पल्प) तथा बोर्ड बनाने के उद्योगों मे कच्चे माल के रुप में इस्तेमाल किया जाता है। वन मंत्रालय ने लंबे समय तक बाँस को पेड की श्रेणी मे रखा इसके बावजूद भी कि इसकी वैज्ञानिक व्याख्या इसे घास बताती है। वन कानून, १९२७ में इसका वर्गीकरण यह निर्धारित करता था कि गिरा हुआ बाँस एक लकडी है, जिस पर वन विभाग के अधिकारियों का नियंत्रण रहेगा। इसे उपजा कर उद्योगों को बेचा जाता था। कुछ अवसरों पर जनजातीय लोगों को हिस्सा मिलता था। जबकि उद्योगों को बाँस कम कीमत पर लम्बे समय के लिए पट्टों पर मिल जाता था।

यू.पी.ए. सरकार के द्वारा वनअधिकार कानून लाने के बाद जनजातीय मंत्रालय ने घास की तेजी से बढने वाली प्रजातियों को वन अधिकारियों के नियंत्रण से बाहर लाने का प्रयास किया। कानून में यह प्रावधान है कि लघु वन उपज को परंपरिक वन भूमि मे उपजाने का अधिकार जनजातीयों को है।

लेकिन वन नौकरशाही ने प्रजातियों के वर्गीकरण तथा नियमों को बदलने से मना कर दिया तथा भारतीय वन अधिनियम और वर्तमान नियमों के आधार पर कई स्तरों पर रुकावटों को खडा किया था। इसके बाद पर्यावरण एवं वन मंत्री ने इसमें हस्ताक्षेप करते हुए अपने अधिकारियों की अपत्तियों को खारिज करते हुए अधिकृत रुप से निर्धारित किया की भारतीय वन अधिनियम, १९२७ के तहत बाँस को लघु वन उपज की श्रेणी में वर्गीकृत किया जायेगा।

स्रोत: http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2012-09-03/india/33562268_1_bamboo-trade-tribal-affairs-ministry-minor-forest

✦✦

बहस, दृष्टिकोण तथा विश्लेषण

टाइगर पर्यटन पर बहस

२४ जुलाई, २०१२ को सुप्रीम कोर्ट ने सभी ४१ टाइगर रिज़र्व के कोर क्षेत्र मे पर्यटन पर पूरी तरह से रोक लगा दी थी। जिसे ३ महिने बाद हटा लिया गया था। इससे दो गंभीर विषयों पर बहस तेज हुई। पहली टाइगर रिज़र्व मे पर्यटन के पडनेवाले प्रभाव पर है तो दूसरी टाइगर रिज़र्व मे परंपरिक वन निवासियों के अधिकारों की स्थिति पर केन्द्रित है।

बहस:

पहली बहस इसपर आधारित है कि टाइगर रिज़र्व के मकोरफ क्षेत्र मे पर्यटन को अनुमति देने से इस क्षेत्र में बाघों की संख्या मे बढोत्तरी होगी या उनपर विपरीत प्रभाव पडेगा। बाघों के संरक्षण से जुड़े लोगों के एक गुट[६] का कहना है कि जागरुक पर्यटन उद्योग बाघों के लिए जरुरी है। अधिक पर्यटन वाले टाइगर रिज़र्वों जैसे– कान्हा और बांधवगढ टाइगर रिज़र्व मे बाघों की संख्या बढी है। जबकि, कम पर्यटन वाले टाइगर रिज़र्व जैसे– सरिस्का और पन्ना जहाँ 'प्रभावहीन' वन विभाग और प्रशासनिक तरीकों को इस्तेमाल किया गया, वहाँ बाघों की संख्या लगभग समाप्त हो चुकी है। इसके विरोध मे तर्क दिया जाता है कि पर्यटन उन रिज़र्व मे आता है जहां बाघों की संख्या पहले से ही अधिक है। इसलिए बाघों की बढी संख्या के लिए पर्यटन उद्योग को श्रेय देना ठीक नहीं है। यदि वास्तविकता मे पर्यटन उद्योग बाघों को बचाने मे सक्षम होता तो उनकी संख्या सरिस्का से खत्म नहीं होती! इसके अलावा इस बहस मे भी पारंपरिक रुप से बाहर रखे गये वन निवासी समुदायों को शामिल नहीं किया गया है। वननिवासियों के समुदायों को पर्यावरण पर्यटन[७] बहस के केन्द्र में लाने की आवश्यकता है। इस स्थिति के लिए केवल प्रशासनिक व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं होगा क्यों कि टाइगर प्रोजेक्ट अभियान सरकार के नेतृत्व पर (और लोगों के सहयोग पर) आधारित था। १९७० में शुरु की गई इस परियोजना के माध्यम से बाघों को विलुप्त होने के खतरे से बाहर लाया गया[८]।

कोर क्षेत्र मे पर्यटन पर लागाई गई पाबंदी ने इस पक्ष को मजबूत किया है कि टाइगर रिज़र्व को मानवीय गतिविधियों से मुक्त होना जरुरी है। इससे इस विचार को भी बढावा मिला कि जो लोग पारंपरिक रुप से टाइगर रिज़र्व मे रह रहे है उनकों रिज़र्व से बाहर जाना चाहिए। इस विचार ने बहस के दूसरे विषय को – स्थानीय वन निवासियों के अधिकार को उजागर किया है।

---

६. स्रोत: **Tourism did not kill the tiger,** Valmik Thapar, http://www.indianexpress.com/news/tourism-did-not-kill-the-tiger/994472/

७. देखे: **Tourists don't kill or save tigers,** Jay Mazoomdaar, http://www.tehelka.com/story_main54.asp?filename=Ws150912TOURISM.asp.

८. देखे: **A Tiger in the Drawing Room,** Ullaas Karanth, Kirthi Karanth, Economic and Political Weekly, Vol XL VII No 38.

अप्रैल २०१२ मे पाबंदी के पहले सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकारों को संकटग्रस्त बाघ आवासों के कोर क्षेत्र की चारो ओर बफर क्षेत्र[९] अधिसूचित करने का निर्देश दिया। इसके लिए कोर्ट ने तीन महिने की समय सीमा तय की[१०]। बफर क्षेत्र अधिसूचित करने की जल्दबाजी में इससे जुडी प्रक्रिया, जो तीन महिने मे पूरी की जानी चाहिए थी, उसे कुछ सप्ताह मे पूरा किया गया और कुछ स्थितियों मे तो यह प्रक्रिया कुछ दिनों मे ही पूरी की गयी,[११] जो कि उचित नहीं था। यह भी तर्क दिया गया कि कोर्ट द्वारा निर्धारित सीमित समय सीमा के कारण राज्य सरकारों ने वन्यजीव (संरक्षण) संशोधन अधिनियम २००६ और वनअधिकार अधिनियम, २००६ में बतायी गयी प्रक्रिया को नजरअंदाज किया। अधिकतर रिज़र्व मे एक बडी जनसंख्या निवास करती है, जिसके लिए कानून मे बताया गया है कि–

१. वन विभाग को ग्रामसभाओं तथा विशेषज्ञ समिति से परामर्श करना चाहिए।
२. बफर क्षेत्र का उद्देश्य इस क्षेत्र में वन्यजीव तथा मानवीय गतिविधियों के सहअस्तित्व को बढाना है।
३. इस क्षेत्र मे जीविका, विकास, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को मान्यता मिले।
४. वनअधिकार कानून २००६ के तहत बताये गये लोगों के अधिकारों को उनके टाइगर रिज़र्व के बाहर पुनर्वास के पहले मान्यता दी जानी चाहिए।

इन उद्देश्यों को कुछ महिनों मे प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

एन.टी.सी.ए. के दिशा–निर्देशों के साथ समस्या

टाइगर पर्यटन तथा कोर/बफर क्षेत्र की स्थापना, तथा उनके उचित रख–रखाव और धार्मिक पर्यटन के लिए व्यापक दिशा–निर्देशों[१२] को बनाने के लिए एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति को यह ज़िम्मेदारी दी गयी कि वह विभिन्न संबंधित कानूनों के साथ एफ.आर.ए. २००६ के प्रावधानों को ध्यान मे रखे और विशेषज्ञों के गुटों और सभी हिस्सेदारों से परामर्श करे। लेकिन सिफारिशों को लेकर विवाद सामने आया[१३] और समिति के दो सदस्यों ने एन.टी.सी.ए. को एक असहमति पत्र दिया। इस पत्र को दिशा–निर्देशों के साथ नहीं दिया गया था[१४]। इस असहमति पत्र मे कुछ चिंताएँ बतायी गयी हैं। जिनमें–

- अपर्याप्त समय में सीमा तय करना
- एफ.आर.ए.,२००६ तथा डब्लू.एल.पी.ए., २००६ का उल्लंघन
- कोर तथा बफर क्षेत्र के निर्धारण के तथ्यों से जुडी चिंता को नजरअंदाज किया गया।
- जबकि इन नियमों से पारंपरिक वन निवासियों पर प्रभाव पडेगा परन्तु उन पर पडने वाले प्रभावों को नहीं बताया गया है

असहमत सदस्यों मे इसको लेकर भी चिंता थी कि पर्यटन सुविधाओं से एकत्र किये गये फंड के आवंटन में पर्यटन उद्योग को अनुचित रुप से विशेष भूमिका दी गयी है। सदस्यों ने बताया कि फंड के उपयोग के निर्णय मे इस समूह की विशेष भूमिका होने से फंड के उपयोग तथा संस्था के निर्णयों पर अनुचित प्रभाव पडेगा[१५]।

इस पूरी बहस से एक महत्वपूर्ण मुद्दा सामने आया है कि टाइगर रिज़र्वों तथा अन्य बिखरें पर्यावरणीय परिस्थितिक तंत्र मे किस तरह के पर्यटन को बढावा दिया जा रहा है। पर्यटन के लिए जरुरी नहीं है कि केवल विलासिता वाले स्थान हो। बल्कि मानकों के आधार पर उचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिसपर लगातार निगरानी रखी जानी चाहिए। विशेष रुप से वह समुदाय आधारित और उनके द्वारा प्रबंधित होना चाहिये या फिर स्थानीय समुदाय की सक्रिय भागीदारी में हाना चाहिए[१६]।

१६ अक्टूबर, २०१२ को सुप्रीम कोर्ट ने अंतरिम रुप से पूरे भारत में टाइगर रिज़र्वों पर लागू प्रतिबंध को हटा लिया। इसके एक दिन पहले एन.टी.सी.ए. ने नया दिशा–निर्देश लागू किये थे। इस प्रकार कोर क्षेत्र में २० प्रतिशत पर्यटन की अनुमति दी गई। इसमें जो कमी है वह यह है कि पारंपरिक वन निवासियों के आधार के लिए मजबूत नहीं की गई है। उन्ही का जीवन महत्वपूर्ण रुप से तेजी से संकटग्रस्त बाघ आवासों के निर्धारण के कारण प्रभावित हुआ है। और हो रहा है।

सहयोग: पर्सिस तारापोरवाला (ईमेल: persis.taraporevala@gmail.com) आप कल्पवृक्ष के साथ संरक्षण और जीविका से जुड़े मुद्दों पर काम कर रही है।

---

९. बफर जोन टाइगर रिज़र्व मे कोर क्षेत्र के चारो ओर एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसका उद्देश्य टाइगर के विस्तार को बढाने के साथ मानव और वन्यजीव के सहअस्तित्व को बढाना है।

१०. राष्ट्रीय टाइगर संरक्षण प्राधिकरण द्वारा २००८ के निर्देशों पर आधारित है। जिसका गठन वन्यजीव संरक्षण कानून (डब्लू.एल.पी.ए.), १९७२ के तहत किया गया था।

११. स्रोत: Future of Conservation Network (Press release 13 August 2012)

१२. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम १९७२ की धारा ३८०(c) के तहत और अन्य अधिनियमों के तहत तथा पिटीशन फॉर स्पेशल लीव टू अपील (सिविल) नं. २१३३९/२०११ में सुप्रीम कोर्ट ने २९–८–२०१२ को दिये हुए अंतरिम आदेश के अनुपालन में ।

१३. देखे: **New eco-tourism guidelines likely to favour tourism industry,** Kumar Sambhav, Sep 24, 2012 http://www.downtoearth.org.in/content/new-eco-tourism-guidelines-likely favour-tourism-industry

१४. देखे: Statement Against the Guidelines on Tiger Reserves Submitted by the National Tiger Conservation Authority (NTCA), Ministry of Environment and Forests (MOEF), Tushar Dash (Vasundhara), Swathi Sheshadri (EQUATION), October 12, http://Kalpavriksh.org/images/CLN/Statement%20 on % 20 buffer%20and %20core%20zones.pdf

१५. देखे: **Tourism rules in tiger reserves violate Wildlife & Forest Act : National Tiger Conservation Authority members,** Urmi Goswami, ET Bureau Oct 3, 2012.

१६. सीमा भट्ट द्वारा दिये गये इस सहयोग के प्रति आभारी है। आप हमारे संपादकीय बोर्ड मे होने के साथ स्वतंत्र रुप से यू.एन.डी.पी. और अन्य संगठनों मे पर्यावरण कनसल्टेंट है। आप राष्ट्रीय जैवविविधता अथार्टी (एन.बी.ए.) के लिए पहुंच और लाभ मे भागीदारी के लिये किये गये केस स्टडीयों से जुडी थी।

कॉंप–११: एक दृष्टिकोण

इस सदी की शुरुआत मे भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय जैवविविधता संधि के शर्तो के अनुरुप भारत के लिए एन.बी.यस.ए.पी. (एन.बी.सैप) – राष्ट्रीय जैवविविधता कार्य योजना तैयार करने के लिए जी.ई.एफ/यू.एन.डी.पी. के सहयोग से एक कार्यक्रम की शुरुआत की थी। मैने आशावादी उत्साह तथा संशय की मिली–जुली भावना के साथ कल्पवृक्ष के सदस्य अशिष कोठारी की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय स्तर की तकनीकी तथा नीति के लिए बने कोर ग्रुप (टी.पी.सी.जी.) में हिस्सा लेने के लिए सहमति दे दी। इस ग्रुप को यह जिम्मेदारी दी गयी थी कि वह तीन वर्ष की समय सीमा मे योजना प्रक्रिया को तैयार करे। यह भी एक तथ्य है कि मुझे भारत के सुप्रीम कोर्ट मे प्रशिक्षण लिए ज़्यादा समय नहीं हुआ था और औपचारिक रुप से १९९८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मे शामिल हुई थी। उस समय सरकार एन.डी.ए. की थी जिससे किसी भी ऐसे काम से जुडने में अरुचि थी जो सरकार से जुडी थी। परन्तु टी.पी.सी.जी. के सहयोगियो तथा योग्य और बुद्धिमान अध्यक्ष अशिष कोठारी ने हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया।

भारत की एन.बी.यस.पी.ए. की प्रक्रिया को प्राय: कानूनी प्रक्रिया के बाहर विश्व की सबसे बडी परामर्श प्रक्रिया बताया जाता है। यह प्रक्रिया विस्तृत रुप में परामर्श योजना से जुडी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी। इस प्रक्रिया से जुडी विशेषताएँ जिन्हे विस्तार से लिखा गया है वह खुद ही प्रजातांत्रिक योजना और प्रभावी स्थानीय प्रशासन पर विचार विमर्श को बताती है।

ईक्कीसवी सदी के १२ वर्षों के बाद अक्टूबर २०१२ मे जैवविविधता पर संधि से जुड़े सभी भागीदार पक्षों के ११वे संमेलन को आयोजित करने की बारी भारत की थी। यह संमेलन मेरे गृहराज्य आंध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद मे संपन्न हुआ।

मैं अपने राजनितिक और व्यक्तिगत कार्यों के सिलसिले में और लोगों से मिलने के उद्देश्य से कॉप–११ के दौरान दो दिन के प्रवास मे हैदराबाद मे थी। इस दौरान टी.पी.सी.जी. के पुराने सदस्यों में से कुछ के साथ मिलना हुआ। यह मुलाकात अनौपचारिक थी। इस दौरान मैं नामपाली मैदान मे आयोजित लोगो के जैवविविधता मेले में आंध्रप्रदेश के आदिवासी समुदायों के सदस्यों से, तथा पल्ली आदिवासी ऐक्य वेदिका के दोस्तों से मिली। इसके अलावा याक्षी, समता तथा नेशनल एलांइस ऑफ पीपल्ज मूवमेंटस जैसे एन.जी.ओ. के सदस्यों, किसानों के समूह जैसे 'टिम्बक्टू कलेक्टिव' जो जैविक खेती करते हैं, उनसे मिली। शिल्परामम सिल्प बाजार में मेरी मुलाकात डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी के दोस्तों, जो खाद्य सुरक्षा के लिए जैविक तरीके से उगाये गये अनाजों को बढावा देते है, से हुई।

जहां तक नागोया प्रोटोकाल से जुड़े 'पहुंच' तथा लाभ की हिस्सेदारी का विषय हैं उसको लेकर जनजातीय तथा अन्य पारंपरिक वन निवासी समुदाय उनकी राज्य सरकारों द्वारा वनअधिकार कानून, २००६ को लागू करने को लेकर चिंतित है। यह राज्य सरकारों के लिए अनिवार्य हैं कि वे अपने राज्य में पूरी और सही राजनीतिक इच्छा शक्ति के साथ इस कानून को लागू करे। यह कानून लकडी के अलावा अन्य वन उपजों पर पहुंच तथा लाभ में भागीदारी के लिए उचित स्थिति लाने के लिए आधार का काम करेगा। प्राकृतिक संसाधनों में लाभ की हिस्सेदारी के लिए संवैधानिक तौर पर मान्य, प्रजातांत्रिक और मजबूत व्यवस्था तैयार हो इसके लिए आवश्यक है कि जैवविविधता कानून, २००२ की व्याख्या वनअधिकार कानून, पंचायती राज कानून तथा पेसा के साथ की जानी चाहिए।

जैवसुरक्षा पर कार्टजीना प्रोटोकाल के संदर्भ मे भारत सरकार को कृषि की स्टैंडिग कमेटी की ३७ वी रिपोर्ट में जैव संवर्धित फसलों के लिए दिये गए महत्वपूर्ण सुझावों पर ध्यान देना होगा। प्राकृतिक संसाधनों (जैसे खनिज संसाधन) के आवंटन के तरीकों के संबंध मे स्पेक्ट्रम आवंटन के संदर्भ मे राष्ट्रपति के निर्देश पर सुप्रीम कोर्ट ने अपने जवाब मे साफ किया कि केवल नीलामी ही तरीका नहीं है जिसके आधार पर प्राकृतिक संसाधनों का आवंटन किया जायेगा। खनन तथा भूमि उपयोग से जुड़े उपयुक्त कानून एवं नीति की अति आवश्यकता है ताकि सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

हैदराबाद में कॉप–११ में कल्पवृक्ष, लोगों और समुदायों के संगठनों के द्वारा दिये गये बयान पर सरकार का विचार करना ठीक होगा जिसमें कहा गया है कि भारत की आर्थिक नीतियां जैवविविधता और जीविकाओं को नष्ट कर रही है। समेकित विकास हो रहा है इसकी वास्तविकता जानने की आवश्यकता है। प्रस्तावित पुनर्वास तथा भूमि अधिग्रहण बिल प्रधानमंत्री द्वारा कॉप–११ में दिये गये बयान से मेल नहीं खाते है। वर्तमान में बढ रहे वैश्वीकरण के दौर मे राजनीतिक दलों के लिए समय है कि वो अपने को अंतर्राष्ट्रीय निर्णय लेने वाले मंच के साथ अपने को सक्रिय रुप से जोडे। कानूनी तौर पर सी.बी.डी. जैसी संधियों में ऐसा कुछ नहीं है जो राजनीतिक दलों की विभिन्न स्तरों पर भूमिका को नकारे। ऐसा करने से अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जाने से पहले मुद्दों पर राष्ट्रीय बहस बढेगी जिससे राष्ट्रीय स्तर पर मुद्दों पर सर्वसम्मति बनाने में मदद होगी।

सहयोग: व्ही.श्रुतिदेवी (ईमेल: shrutidevi@gmail.com), आप जैवविविधता कानून और नीतियों की विशेषज्ञ होने के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की कार्यकर्ता है। इस लेख में व्यक्त किये गये विचार उनके अपने है।

राष्ट्रीय निवेश बोर्ड – पर्यावरणीय न्याय का घटता दायरा

वन या अनुसूचित क्षेत्रों मे परियोजनाओं की मंजूरी मे होने वाली देरी के लिए पर्यावरण मंत्रालय को ज़िम्मेदार ठहराया गया है[१७]। पर्यावरण मंत्री ने स्वयं इस बात को माना है कि वन्यजीव तथा जंगलो पर पड रहा मानवीय दबाव अभूतपूर्व है। इसके पीछे मुख्य कारणों मे आर्थिक विकास पर ज़्यादा जोर देना तथा नौकरियों को बढाना है। पर्यावरण मंत्री का यह बयान वन्यजीवों की सुरक्षा के विषय पर महत्वपूर्ण है। ऐसे भी संकेत है कि यदि पर्यावरण मंत्री बयान को लेकर गंभीर है तो भी उनके प्रयासों के उपयुक्त परिणाम मिलने पर आशंका है। क्योकि उनके साहसी विरोध के बावजूद राष्ट्रीय निवेश बोर्ड (एन. आइ.बी.) की स्थापना आने वाले समय मे होने वाली है[१८]। वित्त मंत्रालय की यह पहल परियोजनाओं को दिये जाने वाले पर्यावरणीय तथा वन मंजूरियों को बढाने का काम करेगी और पर्यावरण मंत्री के अधिकारों को कम करते हुए पर्यावरण मंत्रालय के महत्व को भी कम करेगी। आधारभूत ढांचे के निर्माण से जुडी बडी परियोजनाओं मंजूरियों को जल्दी दिए जाने के लिए एन.आइ.बी. के गठन के विरोध में वन मंत्री ने अपनी गंभीर चिंताओं के बारे में प्रधानमंत्री को लिखा कि यह अवधारणा स्वीकार्य नहीं है। उन्होने बताया कि प्रस्तावित बोर्ड सरकार की निर्धारित काम–काज की प्रक्रिया को बदल देगा। इससे लोगों के हितों की तुलना मे व्यवसायिक हितों को महत्व मिलेगा और सुप्रीम कोर्ट के द्वारा निर्धारित पर्यावरण सुरक्षा के आदेश का उल्लंघन भी होगा। मंत्रीजी ने अपने पत्र मे बताया कि जहां प्रस्तावित एन.आई.बी. स्थापना से १०० करोड या इससे ज़्यादा बडे निवेश को बढावा मिलेगा वही इसमे परियोजना से असंतुष्ट होने पर लोगों, हिस्सेदारों और गैरसरकारी संस्थाओं की सुनवाई पर ध्यान नहीं दिया गया है। और इस प्रकार 'एन.आइ.बी. न केवल मंत्री के अधिकारों को छीन लेगा, बल्कि असफल होने की स्थिति मे (जैसा कि एन.आइ.बी. मे निर्धारित है) इन शक्तियों का प्रयोग केवल बडे निवेशकों के फायदे के लिए होगा, न कि सामान्य और स्थानीय लोगों तथा अन्य भागीदारों के लिए, जो पर्यावरण की अखंण्डता बनाये रखने के प्रति समर्पित है।' यह राष्ट्रीय निवेश बोर्ड तथा पर्यावरण मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र के बीच विरोधाभास को बताता है। क्योकि पर्यावरण मंत्रालय का काम है कि 'पर्यावरण की अखंण्डता को बनाये रखना, यह सुनिश्चित करना कि हमारे वन, वन्यजीव तथा वनवासी सुरक्षित हैं। इसलिए निवेश बोर्ड को अनुमति देना या वित्त मंत्रालय द्वारा पर्यावरणीय चिंताओं पर निर्णय लेना और बदलाव लाना पर्यावरणीय सुरक्षा कानून के सिद्धांतों के पूरी तरह से विरुद्ध होगा।'

दूसरी तरफ, उन्होने इस मान्यता, कि पर्यावरण एवं वन मंत्रालय परियोजनाओं के लिये पर्यावरण मंजूरी को रोक कर रखता है या देरी करता है, का खंण्डन करते हुए बताया कि वास्तविकता मे मंत्रालय द्वारा 'वर्तमान और भविष्य की योजना मे निर्धारित लक्ष्यों से ज़्यादा परियोजनाओं को मंजूरी दी गयी है।' पर्यावरण मंत्री के एन.आइ.बी. के प्रस्ताव के खिलाफ नाराजगी के बावजूद जनजातिय कार्य मंत्री के.सी.देव ने पत्र[१९] के माध्यम से पर्यावरण मंत्रालय द्वारा एफ.आर.ए. कानून[२०] के उल्लंघन करते हुए परियोजनाओं के लिए वन भूमि के आवंटन का विरोध किया जो पर्यावरण मंत्रालय के खुद की कार्यशैली पर प्रश्न चिंन्ह लगाता है।

एक अन्य मौके पर प्रधानमंत्री ने[२१] उपयुक्त जीविका के साधनों को बढावा देते और अपनाते हुए प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग की आवश्यकता को बताया ताकि वनों पर निर्भर समुदायों (जिनमे जनजातीय लोग शामिल है) के सामाजिक और आर्थिक विकास में मदद मिले। उन्होने प्राथमिक हिस्सेदार स्थानीय लोगों को शामिल करते हुए एक समेकित पहल की आवश्यकता पर जोर दिया। दूसरी तरफ उनके आधीन प्रधानमंत्री कार्यलय द्वारा वित्त मंत्रालय को एन.आइ.बी. के गठन की अनुमति[२२] दी जाती है। इसे कोई क्या समझे?

इन विरोधाभासी संकेतों की व्याखा कोई किस प्रकार करे कि वित्तमंत्री द्वारा एन.आइ.बी. की घोषणा, पर्यावरण मंत्री का इसपर नारजगी वाला पत्र और प्रधानमंत्री की वनवासियों पर चिंता। जैसे कि कुछ लोग मानते है कि ये स्थितियां छल तथा दोहरी भाषा[२३] के साथ निर्णय लेने वालो के चरित्र को भी बताते है?

इस विषय मे माननीय पर्यावरण मंत्रीजी का दृष्टिकोण हैं की परियोजना मंजूरी की प्रक्रिया को केवल प्रशासनिक कार्य तक सीमित नहीं किया जा सकता है। ऐसा जरुर जान पडता है कि यह एक राजनीतिक पहलू है। सही मायनों में यह भी प्रश्न है कि राजनीति नियंत्रण करती है या अर्थशास्त्र? सामान्य तौर पर क्या भारत की

---

१७. देखे: **Critical wildlife habitats to become legal entities : Natarajan,** http://www.newstrackindia.com/newsdetails/2012/10/05/349--Critical-wildlife-habitats-to-become-legal-entities-Natrajan-.html

१८. देखे: **Jayanthi Natrajan writes to PM against Chidambaram's proposal: Full letter** http://www.ndtv.com/article/india/jayanthi-natrajan-writes-to-pm-against-chidambaram-s-proposal-full-letter-277651

१९. देखें: **Green panel violating law: Deo Writes To Jayanthi, Says FAC Illegally Giving Forests To Industry,** Nitin Sethi, Times of India, Nov. 2012.

२०. अनुसूचित जनजाति व अन्य वन निवासी (वन अधिकारों को मान्यता) अधिनियम, २००६।

२१. देखें: राष्ट्रीय वन्यजीव बोर्ड की बैठक मे दिये गये प्रधान मंत्री का भाषण, Press Information Bureau, भारत सरकार; प्रधान मंत्री कार्यलय, सितंबर ५, २०१२.

२२: देखें: **NIB gets PMO nod, green clearances for mines ease,** Indian Express, Nov. 2012.

२३: देखें: **The chasm between assurance and action,** Ashish Kothari, The Hindu, Nov. 17 2012**.**

प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्थाऐं सही मायनों मे अपने खुद के लिए या उन लोगों के लिए जो सीधे तौर पर अपने जीवन यापन के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है से जुडी हुई है? या फिर ऐसा नहीं है? या केवल ये पूंजीवाद के उत्पादन प्रक्रिया से प्रेरित लाभ आधारित विकास और निवेश की नीतियों का लाभ एवं हानि की गणित के लेखा–जोखा तक ही सीमित है? ईन प्रश्नों का उत्तर देना जरुरी हैं।

भारत की विकास की नीतियां नयी उदारवाद के ऐजेन्डे पर आधारित है। संरक्षण से जुडा लेखा–जोखा मुख्य रुप से आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित है जिसमें बहुत से आयामों पर विचार नहीं होता है[२४] जिसके द्वारा मनुष्य अपने आप को पर्यावरण से जोडता है। सही मायनों में यह निराशाजनक है। क्या हमारा यह दावा उचित है कि आर्थिक चिंताएँ, राजनीतिक न्याय और पर्यावरणीय चिंताओं से ज़्यादा अहम है और आर्थिक चिंताओं को ज़्यादा प्राथमिकता दी जानी चाहिएँ? इस विषय पर यह तथ्य सही जान पडता है कि वित्त मंत्रालय शर्तो को तय करेगा। यह भी पता चलता है कि प्रजातांत्रिक प्रक्रिया को खत्म करते हुए एन.आइ.बी. के द्वारा वित्त मंत्रालय एकाधिकार लेने मे लगा है। ये सभी तथ्य पर्यावरणीय न्याय के घटते दायरे और आने वाले निराशाजनक समय की ओर इशारा करते हैं।

सहयोग: मिलिंद वाणी (ईमेल: milindwani@yahoo.com)

संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व : जमीनी हकीकत और चुनौतियां

वन्यजीवों तथा उनके आवासों के प्रभावी संरक्षण तथा सुरक्षा से जुडी बहसों तथा चिंताओं में प्रमुख रुप से संरक्षण मे स्थानीय समुदायों की भूमिका तथा भागीदारी शामिल रही है। २००२ मे वन्यजीव संरक्षण कानून में संशोधन को लाकर समुदाय की भागीदारी के लिए प्रावधान किए गये। इस कानून ने भारत में संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व स्थापित करने का रास्ता तैयार किया। संरक्षित क्षेत्र के अंदर इन दो नये क्षेत्रों को जोडा गया क्योंकि प्रस्तावित और स्थापित संरक्षित क्षेत्रों की चारों ओर भूमि पर व्यक्तिगत मालिकाना होने तथा भूमि उपयोग के कारण संरक्षण पूरी तरह से नहीं हो पा रहा था[२५]। संरक्षित रिज़र्व को डब्लू.एल.पी.ए. की धारा ३६A(१) और समुदायिक रिज़र्व को धारा ३६C(१) के अंदर बताया गया है। ये संरक्षित क्षेत्र राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों तथा आरक्षित और संरक्षित वनों से जुडा बढा हुआ भू–क्षेत्र होता है। जब इन दो क्षेत्रों को संरक्षित क्षेत्रों के नेटवर्क मे शामिल किया गया था तब लोगों के समूहों और अन्य संस्थाओं ने यह आशा जताई की लंबे समय से चली आ रही समुदाय की भूमिका को अब कानूनी पहचान मिलेगी और ज़्यादा क्षेत्र संरक्षण की व्यवस्था में शामिल होगा। यह भी आशा की गयी कि इससे संरक्षण मे समुदाय की भूमिका एवं दावों को वैधता मिलेगी। संरक्षण और समुदायिक रिज़र्व मे समुदाय की भूमिका को इन क्षेत्रों के लिए गठित होने वाली प्रबंधन समिति में भागीदारी निर्धारित कर तय की गयी। नये रिज़र्व के लिए समुदायिक प्रबंधन समिति का गठन अनिवार्य किया गया। समिती को यह जिम्मेदारी दी गयी की वह समुदायिक रिज़र्व का संरक्षण, रख–रखाव तथा प्रबंधन करेगी। इसके सदस्यों के चुनाव स्थानीय ग्रामपंचायत या ग्रामसभा से करने का प्रावधान किया गया।

संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व दोनों की घोषणा राज्य सरकार द्वारा की जा सकती है[२६]। संरक्षण रिज़र्व की स्थापना स्थानीय समुदायों के साथ परामर्श के बाद की जा सकती है। संरक्षण रिज़र्व उस क्षेत्र को बताता है जिस पर नियंत्रण और मालिकाना सरकार का हो। यह क्षेत्र विशेष रुप से राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभयारण्यों से लगा क्षेत्र और दो संरक्षित क्षेत्रों को जोडने वाला भू–क्षेत्र होता है। संरक्षण रिज़र्व बनाने के पीछे भू–दृश्यों, समुद्री–दृश्यों, वनस्पतियों तथा वन्यजीवों और उनके आवासों की सुरक्षा करने का प्रमुख उद्देश्य होता है। जबकि समुदायिक रिज़र्व की स्थापना राज्य सरकार द्वारा किसी व्यक्तिगत जमीन या समुदायिक मालिकाना वाली जमीन (जो राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों या संरक्षण रिज़र्व के अंदर न आती हो) पर कर सकती है। इस क्षेत्र में किसी व्यक्ति या समुदाय द्वारा स्वेच्छा से वन्यजीवों और उनके आवासों का संरक्षण किया जा रहा हो। समुदायिक रिज़र्व की स्थापना जीवों, वनस्पतियों तथा संरक्षण पारंपरिक या सांस्कृतिक मूल्यों एवं तरीकों के संरक्षण के उद्देश्य से किया जाता है। संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व मे रहने वाले लोगों के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पडता है।

वन्यजीव, वन तथा जैवविविधता से संबंधित कानूनों मे समुदाय के लिए स्थान

इन दो नये वर्गों या क्षेत्रों मे वन भूमि मे व्यक्तिगत या समुदाय या दोनों को अधिकार नहीं दिये गये है। संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क का हिस्सा है। प्रबंधन मे समुदाय की भागीदारी तथा वन्यजीव और उनके आवासों के संरक्षण से जुड़े प्रशासन बहुत ही जटिल है। वन क्षेत्रों के संरक्षण तथा प्रबंधन से समुदाय को अलग रखना वास्तविकता से दूर है। इसे राज्य द्वारा स्वीकार्य करने के बावजूद भी जमीनी स्तर पर वन प्रशासन के तहत प्रभावी भागीदारी तय करने की दिशा में बहुत थोडा प्रयास किया गया है। डब्लू. एल.पी.ए. में संशोधनों के ज़रिये जब इन दो वर्गों को जोडा गया था, तब विभिन्न संगठनों ने यह आशा ज़ाहिर की थी कि समुदायों को

२४: देखें: **Worrisome Business of the National Investment Board,** Economic and Political Weekly, November 10, 2012.

२५. स्रोत:http://en.wikipedia.org/wiki/Conservation_reserves_and_community_reserves_of_India

२६. स्रोत:http://envfor.nic.in/downloads/public-information/protected-area-network.pdf

प्रबंधन तथा संरक्षण में उनका हक मिलेगा। परन्तु, उनमें शंका भी थी कि क्या समुदायिक और संरक्षण रिज़र्व को जरुरी आधार और संस्थागत् समर्थन मिलेगा? या क्या राज्य के प्रभुत्व वाली व्यवस्था स्थानीय तौर–तरीकों वाले उचित संरक्षण को लायेगी? इसके संदर्भ में बचाव के कुछ बिंदु बताये गये है (दत्त बी, २००३)[२७]। संरक्षित क्षेत्रों मे इन दो नये वर्गों के संदर्भ में महत्वपूर्ण तर्क दिये गये थे। समुदायिक रिज़र्व के लिए यह तर्क दिया गया कि इससे वन विभाग को निजी भूमि में नियंत्रण का मौका मिलेगा जो उसके नियंत्रण में पहले नहीं थी। इसी प्रकार संरक्षण रिज़र्व के विषय में प्रबंधन समिति इन क्षेत्रों का रख–रखाव करेगी जिसमें समुदाय की कोई भूमिका या शक्ति नहीं है (सेखसरिया.पी. २००४)[२८]।

देश के संरक्षण / समुदायिक रिज़र्व के उपलब्ध आंकडे बताते हैं कि संरक्षित क्षेत्रों के अंदर ज़्यादा से ज़्यादा क्षेत्र को लाने के प्रति न तो राज्य और न ही वन विभाग गंभीर रहा है। पिछले १० वर्षों मे जब से इन क्षेत्रों से जुड़े प्रावधान बनाये गये है तब से केवल ४७ संरक्षित रिज़र्व और ४ समुदायिक रिज़र्व की स्थापना की गयी है। राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वो अपनी सीमा मे इन रिज़र्वों की स्थापना कर सकते हैं। परन्तु राज्य सरकारें इसको लेकर अब तक बहुत उत्साहित नहीं रही है। जिससे यह साफ होता है कि वे वनों तथा वन्यजीवों के संरक्षण तथा प्रबंधन मे समुदाय के महत्व को लेकर गंभीर नहीं है। संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व से जुड़े सीमित आकडों के कुछ और भी कारण हो सकते हैं। यह आंकलन करने की आवश्यकता है कि क्यो राज्य संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व को अपनी राज्य की सीमा मे गठन करने के प्रति गंभीर नहीं है और क्यो संगठनों और समुदायों में इन वर्गों को लेकर उत्साह नहीं है। कुछ मुद्दे जो इस प्रक्रिया मे रुकावट डाल रहे हैं–

- **मान्यता की कमी:** कभी–कभी दिये जाने वाले कुछ पुरस्कारों के अलावा अधिकतर समुदाय के संरक्षण के प्रयासों को पहचान नहीं मिल पाती है। औपचारिक कानून तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं द्वारा स्थानीय ज्ञान और संस्थाओं को संरक्षण तथा विकास के कार्यों मे महत्व को पूरी तरह नहीं समझा गया है।
- **बाहरी प्रभाव:** बहुत से बाहरी कारक जैसे विश्व की ताकते और एकतरफा विकास, बाजार से जुडी ताकतें तथा अनुपयुक्त बाहरी फंडिंग समुदाय के प्रयासों को प्रभावित कर रहे है।
- **समुदाय की आंतरिक गतिविधियां:** समुदाय के सामने आनेवाले बुनियादी मुद्दों (जैसे आंतरिक विवाद, असमानता, कमजोर संस्था तथा बदलते सामाजिक मूल्यों) की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि समुदायों के प्रयासों को लंबे समय तक सहयोग मिल सके।
- **प्राकृतिक संसाधनों का दोहन:** अधिकतर इन क्षेत्रों मे कीमती खनिज संसाधनों के पाये जाने के कारण इनका व्यवसायिक दोहन किया गया। समुदाय के सभी प्रयास तथा परिश्रम निरर्थक हो जाते है जब उनके द्वारा संरक्षित क्षेत्र को खनन के लिए पट्टें मे दे दिया जाता है।
- **अन्य कानूनी उपायों को लागू नहीं किया जाना:** वनअधिकार कानून से जुड़े समुदाय के वन संसाधनों पर अधिकारों को पूरी तरह से लागू करने की आवश्यकता है। ऐसा करने से संरक्षण मे समुदाय की भूमिका लम्बे समय के लिए तय होगी और पहचान मिलेगी जैसा कि डब्लू.एल.पी.ए. १९७२ तथा एफ.आर.ए., २००६ में प्रावधान है।

समुदायिक तथा संरक्षण रिज़र्व प्रभावी स्थानीय प्रशासन व्यवस्था मे बुनियादी भूमिका निभा सकता है, जिसे पहचानने की जरुरत है।

- ये प्रभावी परिस्थितिक तंत्र, अति महत्त्वपूर्ण वन्यजीव आवासों तथा महत्त्वपूर्ण प्रजातियों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। क्योंकि ये क्षेत्र अक्सर वन्यजीवों के लिए गलियारे के रुप मे कार्य करते है और संरक्षित क्षेत्रों के बीच एक कडी को बनाते है।
- इनमे से कुछ महत्वपूर्ण पर्यावरणीय सेवाओं के लिए जिम्मेदार होते है, जैसे मृदा संरक्षण, जल सुरक्षा, जीन बैंक आदि।
- ये पारंपरिक कृषि व्यवस्था तथा वन पर्यावरण व्यवस्था के बीच संबंध बनाने के साथ–साथ बडे भू–दृश्यों को समेकित या एकीकृत करते हैं।
- ये स्थानीय अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण है। हजारों लोग जीवित रहने के लिए निर्भर रहते हुए सामाजिक–सांस्कृतिक रुप से इससे जुड़े होते है।
- ये समुदाय आधारित प्रारुपों के रुप मे देखे जाते हैं, जो पर्यावरणीय ज्ञान की व्यवस्था पर तैयार किये गये हैं, और जो हाल के संरक्षण विज्ञान के विकास तथा परांपरिक ज्ञान के बीच एकीकरण करते है। ये स्थानीय समुदाय को विनाशकारी व्यवसायिक गतिविधियों के खिलाफ विरोध को भी दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए संरक्षित वनों को खनन, बांध तथा उद्योगों, समुद्री संसाधनों के दोहन और गैरकानूनी तरीकों से मछली पकडने आदि के कारण संकट।

विभिन्न स्थानीय जनजातीयों और अन्य वन निवासियों के समूहों और व्यक्तियों के लम्बे समय के प्रयास के बाद जनजातीय और परंपरागत वन निवासियों के अधिकारों तथा पट्टों को मान्यता विशेष रुप से वनअधिकार कानून, २००६ के लागू होने के बाद मिली। इस कानून मे लाखों जनजातीय तथा वन मे निवास करने वाले अन्य लोगों के अधिकारों के लिये प्रावधान हैं। जिसमें उनके वनअधिकार के साथ वन क्षेत्र मे कृषि भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार तथा सार्वजनिक संपत्ति/ संसाधनों पर समुदाय के अधिकारों की मान्यता को निर्धारित

---

२७. स्रोत: http://www.downtoearth.org.in/node/13275

२८. स्रोत: http://infochangeindia.org/environment/analysis/pitting-communities-against-conservation.html

किया गया है[२९]। समुदायिक वनअधिकार (सी.एफ.आर.) को एफ.आर.ए. की धारा ५ की उपधारा ३(१) मे मान्यता दी गयी है। जबकि नियम ४e(१) के तहत ग्रमसभा को वन्यजीवों तथा जैवविविधता के टिकाऊ उपयोग तथा संरक्षण के लिए एक समिति गठित करने के लिए अधिकृत किया गया है। महत्वपूर्ण रुप से एफ.आर.ए. समुदाय को समुदायिक वनअधिकार के लिए दावें करने का अधिकार देता है जैसे कि एफ.आर.ए. के प्रावधान तथा डब्लू.एल.पी.ए. के तहत संरक्षण तथा समुदायिक रिज़र्व के प्रावधान समुदाय के संरक्षण भागीदारी के अवसर देते है। परन्तु दोनो इस रुप मे अलग है कि एफ.आर.ए. के केन्द्र मे समुदाय हैं वही डब्लू.एल.पी.ए. के केन्द्र में वन्यजीव और उनके आवास हैं।

सहयोग: विकल समदरिया (ईमेल: vikalgreen@gmail.com) आप कल्पवृक्ष के साथ संरक्षण और जीविका के मुद्दों पर काम कर रहे है।

✦✦

कार्यशाला और सम्मेलन

वनअधिकार कानून तथा संरक्षित क्षेत्रों पर राष्ट्रीय स्तर का परामर्श

१२–१३, अगस्त, २०१२ नई दिल्ली में ऐक्शन एड के सहयोग से फ्यूचर ऑफ कंजर्वेशन नेटवर्क द्वारा एक राष्ट्रीय स्तर का परामर्श आयोजित किया गया। अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वनअधिकारों की मान्यता) अधिनियम (जिसे सामान्य तौर पर वनअधिकार कानून या एफ.आर.ए. कहा जाता है) को २००६ मे अधिसूचित किया गया तथा यह २००८ से प्रभाव मे आया। यदि एफ.आर.ए. की व्याख्या सही मायनों मे की जाऐ और इसके अनुरुप लागू किया जाऐ तो इस अधिनियम द्वारा प्रशासन के सामने आने वाली कुछ गंभीर समस्याओं को कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है। परन्तु विभिन्न राज्यों से संरक्षित क्षेत्रों मे एफ.आर.ए. के लागू किये जाने की स्थिति को लेकर उपलब्ध रिपोर्टें मिली–जुली स्थिति की ओर संकेत करती है:

- राज्य तथा लोगों के बीच संबंध को लेन–देन के रुप मे देखा जाता है और जीविकाओं के लिए जंगल के उपयोग को अभी भी संरक्षण के उद्देश्यों के खिलाफ माना जाता है। ऐसा इसलिए है कि पहले के सभी राष्ट्रीय उद्यानों, वन्यजीव अभयारण्यों तथा टाइगर रिज़र्वों से जुड़ी नीतियां संरक्षण से लोगों के अलगाव पर आधारित हैं।
- जबकि कुछ संरक्षित क्षेत्रों मे लोगों के अधिकारों को मान्यता मिली है (जैसे कि बिलिगिरी रंगास्वामी मंदिर अभयारण्य, कर्नाटक) और अधिकतर संरक्षित क्षेत्रों मे अधिकारों को मान्यता नहीं मिली है। जिन संरक्षित क्षेत्रों में ऐसा नहीं हुआ है वहां यह आरोप लगाये जाते हैं कि लोगों का पुर्नावास एफ.आर.ए. को लागू किए बिना ही हुआ है (विशेषकर समुदायिक अधिकारों का)। इस स्थिति ने पर्यावरण मंत्रालय और जनजातिय कार्य मंत्रालय (एम.ओ.टी.ए.) को सर्कुलर देने के लिए बाध्य किया। इस सर्कुलर में राज्यों से कहा गया कि वे पुनर्वास के पहले एफ.आर.ए. उचित तरह से लागू हो यह सुनिश्चित करें। संकटग्रस्त टाइगर आवासों (सी.टी.एच.) से पुनर्वास के प्रोटोकाल को सामाजिक संगठनों तथा संरक्षण से जुड़े लोगों की चिंताओं पर विचार किए बिना ही अंतिम रुप दे दिया गया।
- संकटग्रस्त वन्यजीवों से जुड़े दिशा–निर्देशों को अभी तक तैयार नहीं किया गया है। यह जरुरी है कि जब इन दिशा–निर्देशों को अंतिम रुप दिया जाए तो उसमे सामाजिक तथा पर्यावरणीय मुद्दों को शामिल किया जाऐ।

इन मुद्दों को ध्यान मे रखते हुए फ्यूचर आफ कंजर्वेसन नेटवर्क ने १२ और १३ अगस्त २०१२ को डब्लू.डब्लू.एफ. के सभागार मे दो दिन की मीटिंग का आयोजन किया। इसमें कुछ समुदाय के प्रतिनिधियों, शिक्षा क्षेत्र से जुड़े लोगों, सामाजिक संगठनों तथा संरक्षण से जुड़े लोगों ने हिस्सा लिया। कुछ प्रमुख मुद्दे जिन पर इस मीटिंग मे विचार–विमर्श किया गया, उनमे संरक्षित क्षेत्रों मे एफ.आर.ए. को प्रभाव में लाना, संकटग्रस्त टाइगर आवासों के तहत अक्षत क्षेत्र (ऐसा क्षेत्र जिसका उल्लंघन नहीं हो) की स्थापना मे एफ.आर.ए. तथा डब्लू.एल.पी.ए. मे पुनर्वास से जुड़े मुद्दे, स्वेच्छ बनाम प्रेरित पुनर्वास: सी.एफ.आर. के बाद प्रबंधन, अन्य नीतियों से जुड़े मुद्दे तथा लागू किए जाने से जुड़े मुद्दे शामिल थे। इस विचार–विमर्श से भविष्य मे किये जाने वाले कार्यों के लिए सिफारिशें सामने आयी।

सहयोग: शीबा देसोर (ईमेल: desor.shiba@gmail.com) आप संरक्षण और जीविका से जुड़े मुद्दों पर कल्पवृक्ष के साथ काम कर रही हैं।

✦✦

२९. स्रोत: http://www.fra.org.in

केस स्टडी (विषय अध्ययन)

काले मृग (हिरण) की भेटनोई–बालीपदार क्षेत्र मे सुरक्षा

ओडिशा के गंजम जिले के भेटनोई–बालीपदार–बुगुदा क्षेत्र काले हिरण (एंटीलोंप सेरविकपरा) समुदायिक वन्यजीव संरक्षण का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। एक हजार से अधिक काले हिरण ७० गांवों के क्षेत्र मे आश्रय पाते है। इस क्षेत्र के राज्य का सूखाग्रस्त क्षेत्र होने के बावजूद भी इन गांवों के लोग अपने कृषि उत्पादन का एक बडा भाग हिरणों की संख्या के कारण गंवा देते है। ओडिशा के लोगों को बुगुदा के इस संरक्षण के पहल की जानकारी तब मिली जब इस पहल को पहला वन्यजीव संरक्षण पर बीजू पटनायक पुरुस्कार दिया गया। उपलब्ध साक्ष्य बताते हैं कि संरक्षण की यह पहल १९१८ से चली आ रही है। पिछले ५० वर्षों मे सुरक्षा उपायों को मजबूत बनाया गया है ताकि शिकार एवं अन्य कारणों से जानवरों की संख्या मे आ रही कमी को रोका जा सके। समुदाय द्वारा सुरक्षा के उपायों को किये जाने के बाद संख्या मे ५ गुनी बढोत्तरी हुई है। रिपोर्ट बताती है कि पानी की कमी के कारण तथा काले मृग के फसल नुकसान करने के कारण ६० प्रतिशत भूमि बंजर है। इसके बावजूद गांव के लोग किसी को भी जानवरों का शिकार करते पाते हैं तो उसे समझाते हुए रोकते है। गांव के लोगों का मानना है कि मृग भगवान राम और कृष्ण के भक्त है इस कारण इनको मारना पाप है।

पाकिडी :– मयूर (मोर) का स्वर्ग

पाकिडी पहाडी क्षेत्र ओडिशा के गंजम जिले मे आता है। यह क्षेत्र ओडिशा के लोगों की जानकारी मे तब आया जब पाकिडी की ममोर संरक्षण समितिफ को २००६ मे वन्यजीव संरक्षण के लिए बीजू पटनायक पुरस्कार दिया गया। इस पुरस्कार ने पाकिडी के लोगों की मोर (पावो क्रिस्टेटस) संरक्षण की दिशा मे महत्वाकांक्षा को बढाया। इस क्षेत्र के सात गांवों के लोगों द्वारा सक्रिय रुप से मोरों की सुरक्षा की जा रही है। गांव के सभी लोग पक्षियों की सुरक्षा, भोजन और पानी की जरुरतों को लेकर जागरुक हैं। पाकिडी के खेतों मे मोर बिना किसी बाधा के चरते है। ग्रामीणों का पक्षियों से लगाव इतना ज़्यादा है कि इसे तब अनुभव किया जा सकता है जब महिलाऐं और बच्चे मिट्टी के बर्तन मे पानी देते है जिसके लिए उन्हे भीषण गर्मी मे कई किलोमीटर चलना पडता है। यह गांव के लोगों द्वारा बारी–बारी से किया जाता है। इस प्रकार ग्रामीण जिम्मेदारी को अपने बीच बांटते हुए पक्षियों की सुरक्षा करते है। इस पूरी पहल मे वन विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

नोट: ऊपर दिये गये दो अध्ययन ओडिशा स्थित गैर सरकारी संस्था वसुंधरा द्वारा सहयोग के रुप में दिये गये हैं।

श्रीलंका में कछुआ संरक्षण पर तथ्य

श्रीलंका एक द्वीपीय देश है जो अपने सुंदर समुद्रकिनारों, धर्म तथा पहले हुई दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के लिए जाना जाता है। इस देश में और भी कुछ है। पिछले दशक से यह देश अपनी विविधता वाले वन्यजीव जैसे हाथी, तेन्दुआ, समुद्री कछुओं आदि के संरक्षण के लिए काम कर रहा है। संरक्षण के यह प्रयास वन्यजीवों को सुरक्षा के साथ–साथ स्थानीय अर्थव्यवस्था मे भी सहयोग देते है।

विश्व मे कछुओं की सात प्रजातियों को पहचाना गया है जिसमे से पांच प्रजातियां सामान्यतौर पर श्रीलंका के तटों मे पायी जाती है। उन पांच प्रजातियों मे ग्रीन टर्टल (चिलोनिया माइडस), ऑलिव रिडली (लिपीडोचीलिस ओलीवेसीया) हॉक्स्बिल टर्टल (ईरटभोचिलिस इमब्रीकाटा), लॉगरहेड टर्टल (केरिटा केरिटा) तथा लेदर बैक टर्टल (डीरमोचिलिस कोरीएसिआ) हैं। इनकी घटती संख्या के पीछे प्रमुख कारण मछली पकडना, मानवीय गतिविधियां, प्राकृतिक आपदा और लूट–मार है।

मुझे कछुओं के संरक्षण पर अनुभव लेने का अवसर श्रीलंका के समुद्रकिनारों (इन–सीटू) मे तथा अलग स्थानों (एक्स–सीटू) पर संरक्षण का काम करने के दौरान मिला था। एक्स–सीटू संरक्षण विकलांग कछुओं और उनके अण्डों को (जिनका जीवन प्राकृतिक या मानवीय स्थितियों के कारण खतरे मे रहता है उनको) सहारा और आश्रय देता है। अण्डों को रेत के नीचे दबाया जाता है जहां कृत्रिम घोसलें प्राकृतिक घोसलों जैसे बनाये जाते हैं। जिस स्थान मे अण्डों को दबाया जाता है उसे जाल से ढक दिया जाता है। यह स्थान पेडों से घिरे छायादार क्षेत्र होते है। ये स्थितियां अधिक से अधिक सफल परिणामों के लिए वातावरण बनाती है। कछुओं के बच्चों और उनसे बडे कछुओं को समुद्री पानी से भरे टैंकों में रखा जाता है। उनको भोजन के लिए मछलियां और समुद्री घास दी जाती है ताकि वो जीवित रह सके और छोडे जाने के बाद जीवित रहने का उचित अवसर सुनिश्चित हो सके। अधिकतर नये जन्मे कछुओं को समुद्र में रात में छोडा जाता है ताकि पक्षी उन पर हमला कर नुकसान न पहुंचा सके।

एक्स–सीटू (हैचरी) संरक्षण स्थानीय लोगों के साथ पूरे विश्व से आने वाले पर्यटकों को कछुआ संरक्षण के विषय में जागरुकता लाने में मदद करता है। हैचरी स्थानीय ग्रामीणों की आमदनी का बहुत बडा जरिया होता है क्योकि लगभग सभी हैचरी के द्वारा एक दुकान लगायी जाती है जहां स्थानीय दस्तकारी की चीजें मिलती है जो श्रीलंका संस्कृति से जुडी होती है। दूसरी तरफ, समुद्रकिनारा संरक्षण कछुओं के घोसलों को उनके प्राकृतिक स्थलों पर सुरक्षित करने से संबंधित है। समुद्रकिनारों मे घोसलों पर लगातार निगरानी स्थानीय ग्रामीणों द्वारा की जाती है जिन्हे घोसलों का रखवाला कहा जाता है। ये सुरक्षाकर्मी समुद्रकिनारों मे रात को पहरेदारी करते है और घोसलों के बनने पर नजर रखते हैं तथा यह सुनिश्चित करते हैं कि यह अच्छी तरह से तैयार हो सके। पहरेदारों का यह काम होता है कि वे घोसलों को नोट करे और निगरानी रखे। एक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है जिसे मटर्टल वांचफ कहा जाता है, जिसमे पर्यटक समुदकिनारे मे कछुओं द्वारा घोसलों के निर्माण को देख सकते है। परंतु इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सिर्फ पैसा कमाना है; इसका संरक्षण से कोई लेना देना नहीं है।

श्रीलंका में फौना तथा फ्लोरा सुरक्षा अधिनियम १९३८ (संशोधन १९७२) के तहत् कछुओं को सुरक्षा दी गयी है। वन्यजीव

तथा वनस्पतियों के संकटग्रस्त प्रजातियों अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संधि (सी.आइ.टी.ई.यस.) जिनके तहत कछुओं या उनके उत्पादों के व्यापार पर प्रतिबंध है (फिशर–१९९५) इसके बावजूद कछुओं की संख्या को सुरक्षित करने में संघर्ष करना पड रहा है। उन्हें सरकारी तथा तकनीकी सहयोग की आवश्यकता है। उचित और उपयुक्त सहायता से श्रीलंका न केवल एक महत्वपूर्ण पर्यटक स्थल होगा बल्कि एक विकासशील देश का उदाहरण होगा जो वन्यजीव संरक्षण की दिशा में संघर्ष कर रहा है।

सहयोग: नूपुर काले (ईमेल: nupur.kale03@gmail.com) युवा नूपुर काले पुणे स्थित है और आप कछुओ के संरक्षण विषय में रुचि रखती हैं।

भोरगड़ : सात पहाडियों वाला संरक्षण रिज़र्व

भोरगड़ संरक्षण रिज़र्व (बी.सी.आर.) महाराष्ट्र का अबतक का अकेला संरक्षण रिज़र्व है जिसकी स्थापना मार्च २००८ में अधिसूचना जारी कर की गयी थी। बी.सी.आर. नासिक के पूर्वी वन मंडल के ३४९.२७७ हेक्टेयर क्षेत्र मे फैला है। इसके गठन का उद्देश्य वन्यजीव तथा पर्यावरण की सुरक्षा, प्रसार तथा विकास करना था। बी.सी.आर. नासिक जिले के दिंडोरी तहसील के तुंगलदरा गांव के नजदीक राशेगांव वन बीट में भोरगड़ पहाडी के नं. ६२२ के हिस्से मे स्थित है। इस क्षेत्र की विशेषता है कि यह पर्यावरणीय रुप से उपयुक्त वन, घास क्षेत्र तथा आर्द्र भूमि वाला स्थान है। यह स्थान सह्याद्री के पश्चिमी घाट मे त्रयंबकेश्वर पहाडी रेंज का हिस्सा है जिसमें सीढीदार क्षेत्र, घास वाले ढलान, वन क्षेत्र वाले बाग तथा लघु सिंचाई के निचले क्षेत्र है। बी.सी.आर. क्षेत्र में सात पहाडियां आती है जिनमें माकाडसेपा, नवरा, नवरी, देर किला, भोरगड़, उखालिआ दांद और दो छोटी पहाडियां है। भारतीय वायु सेना ने भोरगड पहाडी के शिखर पर तकनीकी संचार केन्द्र (ट्रोपो केन्द्र) १० हेक्टेयर मे स्थापित किया है। इस क्षेत्र मे कोई मानव आवास नहीं है।

इस क्षेत्र को संरक्षण रिज़र्व बनाने के लिए प्रस्ताव नासिक की प्रकृति संरक्षण सोसाइटी (एन.सी.यस.एन.) जो गैर–सरकारी संगठन है, उससे जुड़े श्री बिश्वरुप राहा द्वारा २००७ मे दिया गया था। उनका यह प्रस्ताव भोरगड़ क्षेत्र के जीवों तथा वनस्पतियों को संरक्षित करने को लेकर था। क्योंकि यह क्षेत्र प्राकृतिक जीवों और वनस्पतियों से घनी क्षेत्र है। इसके पहले एन.सी.यस.एन. ने स्वयं ही इस क्षेत्र के जैवविविधता अध्ययन को शुरु किया और स्थानीय लोगों के साथ इस क्षेत्र के प्रभावी संरक्षण तथा प्रबंधन पर विचार–विमर्श शुरु किया था। शुरु में वन विभाग इस क्षेत्र को संरक्षण रिज़र्व घोषित करने को लेकर गंभीर नहीं था। वन विभाग का तर्क था कि आरक्षित वन क्षेत्र की सीमा में संरक्षण रिज़र्व घोषित नहीं किया जा सकता है। बाद मे एन.सी.यस.एन. ने बडे अधिकारियों से विचार–विमर्श किया जिससे उनको सफलता मिली। बी.मजूमदार, प्रधान मुख्य वन संरक्षक (पी.सी.सी.एफ.), वन्यजीव, महाराष्ट्र ने क्षेत्र मे जाकर गांव के लोगों के साथ परामर्श के बाद ३ अक्टूबर, २००७ को राज्य सरकार से इस क्षेत्र को संरक्षण रिज़र्व घोषित करने की अनुशंसा की।

बी.सी.आर. के पास स्थित तुंगलदरा पहला गांव था जिसने संरक्षण रिज़र्व के गठन के विचार को स्वीकार किया और एन.सी.यस.एन. के साथ मिलकर इस क्षेत्र के संरक्षण तथा प्रबंधन का काम किया। ग्रामीणों ने बाहरी लोगों द्वारा की जा रही गैर कानूनी गतिविधियों जैसे शिकार, चराना तथा पेडों की कटाई मे रोक लगाई।

अक्सर यहां एन.सी.यस.एन. स्कूल के बच्चों को बी.सी.आर. के पक्षियों, स्तनपायी जानवरों, रेप्टाइल, पौधों तथा जैवविविधता के बारे मे जानकारी देने के लिए लाते हैं। श्री भूरे (रिटायर्ड वनअधिकारी और वर्तमान मे एन.सी.यस.एन. के सदस्य) कहते हैं कि "पहले चारों ओर के अन्य गांव जैसे नालाची वाडी, ढेरवाडी, पिंपळनारा, गोवलवाडी व अशेवाडी संरक्षण रिज़र्व बनाने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन बाद मे विचार–विमर्श तथा मीटिंग के कुछ प्रयासों के बाद उनमें से कुछ इसको संरक्षित करने के लिए तैयार हो गये थे।" महिन्द्रा समूह की कंपनियों के सहयोग और फंड से एन.सी.यस.एन. ने एक लाख पेडों को लगाया है और इसका रख–रखाव कर रहे है। यह प्रयास तुंगलदरा गांव के पांच लोगों के सहयोग से हो रहा है जिसके लिए उन्हे नियुक्त किया गया है।

राहाजी का कहना है कि इस क्षेत्र मे स्थानीय जीव–जंतुओं और वनस्पतियों की विविधता है। यहां संकटग्रस्त लाँग बिल वल्चर तथा अन्य पक्षी जैसे मलबार व्हिस्लिंग थ्रश, भारतीय रोलर, मोर, ईगल, पेंटेड फैंकलीन, उल्लू, बाज, बुलबुल, झाडी में रहने वाली बटेर, मधुमक्खी खानेवाला, हैरिअर, चील, गिरगिट, कबूतर, लार्क, मैना आदि मिलते हैं। इस क्षेत्र को कई अन्य जानवरों जैसे भेडिया, लकडबग्घा, जंगली बिल्ली, खरगोश, लोमडी, साही, सियार और कभी–कभी तेंदुआ तथा पानी और जमीन मे चलने वाले जीव जैसे सांप, मेंढक, छिपकली आदि के लिए भी जाना जाता है।

यह क्षेत्र भारत के दक्षिणी उष्ण कटिबंधीय शुष्क पतझड वन तथा आर्द्र पतझड वन वाला क्षेत्र है। यहां पहाडी ढलान और पठारी घास क्षेत्र है जहाँ कम ऊंचाई वाले पौधों के विकास के लिए है। कुछ प्रमुख वनस्पतियां जो इस क्षेत्र मे पायी जाती है उनमे टेक्टोना ग्रांडिस, टर्मिनेलिया, अलाहा, टर्मे नेलिया चिबुला, टर्मे निया बेलेरिका, लागर्स्ट्रो मिआ पार्वीफ्लोरा, बुटी आमोनोस्पर्मा, डिओस्पीरोस मिलानोजाइलोन, कॅसिया फिस्टुला, बाउहिनिया रेसेमोसा, सिझिजिअम क्युमिनी, फाइकस बेन गलिनिसिस, फाइकस रेसामोसा, बॉमबॅक्स सेइबा आदि है। वेलु चाउथे जो इस गांव मे रहते है और बी.सी.आर. के संरक्षण से जुड़े हुए है उन्होने हमे बताया कि बी.सी.आर. की सुरक्षा से फायदा मिल रहा है जैसे अधिक घास की पैदावार और बढा हुआ जमीन का जलस्तर महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा यहां से ग्रामीण घास, जलाऊ लकडी, जंगली सब्जी, फल तथा अन्य वन उत्पादों को एकत्र करते है जैसे – कर्टुली, छाय, गोमेथी, मेख, करोंदा, गणेश कमल और धामण जिसमें से कुछ हिस्सा बेच दिया जाता है जो कमाई का एक जरिया है।

सहयोग: प्रदीप चव्हान (ईमेल: prdprn@gmail.com) आप कल्पवृक्ष के साथ संरक्षण और जीविका के मुद्दों पर काम कर रहे हैं।

✦✦

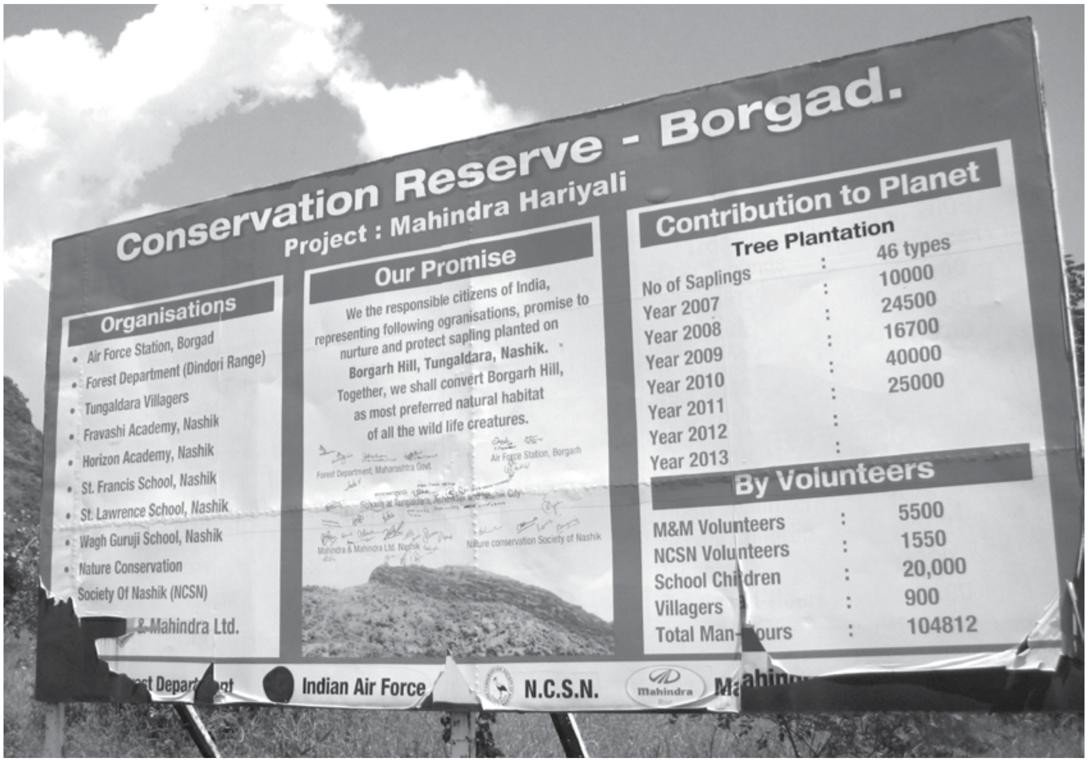

पाठकों के लिए संदेश:

प्रिय पाठकों, यदि आप समुदाय व संरक्षण की प्रति किसी अलग पते पर प्राप्त करना चाहते है तो कृपया हमें अपना पता kvoutreach@gmail.com पर या नीचे लिखे पते पर भेजे दें।

कल्पवृक्ष,
डाक्यूमेन्टैशन एवं आऊटरीच सेंटर (प्रलेखन एवं पहुंच केन्द्र)
अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८, डेक्कन जिमखाना, पुणे–४११००४, महाराष्ट्र (भारत)
वेबसाइट: www.kalpavriksh.org
समुदाय व संरक्षण : जैवविविधता संरक्षण एवं जीविका सुरक्षा
अंक ४, नं. ३, मे–अक्टूबर २०१२
संपादक : मिलिन्द वाणी
परामर्श एवं संपादकीय सहयोग : नीमा पाठक
संपादकीय सहायता : अनुराधा अर्जुनवाड़कर, शर्मिला देव, पंकज सेखसरिया, सीमा भट्ट
हिन्दी अनुवाद : विकल समदरिया
कवर फोटो : फोटो १: नूपुर काले, फोटो २: प्रदीप चव्हान
अन्य फोटो : http:// -google.co.in, प्रदीप चव्हान
प्रकाशक : कल्पवृक्ष, अपार्टमेंट ५, श्री दत्त कृपा, ९०८, डेक्कन जिमखाना, पुणे–४११००४
फोन : ९१–२०–२५६७५४५० फोन/फैक्स : ९१–२०–२५६५४२३९
ईमेल : kvoutreach@gmail.com वेबसाइट: www.kalpavriksh.org
आर्थिक सहयोग : मिजेरिओर

निजी वितरण के लिये

प्रकाशित विषयवस्तु (Printed matter)
सेवा में,